ISSN 970-9312

प्राथमिक शिक्षक

शैक्षिक संवाद की पत्रिका

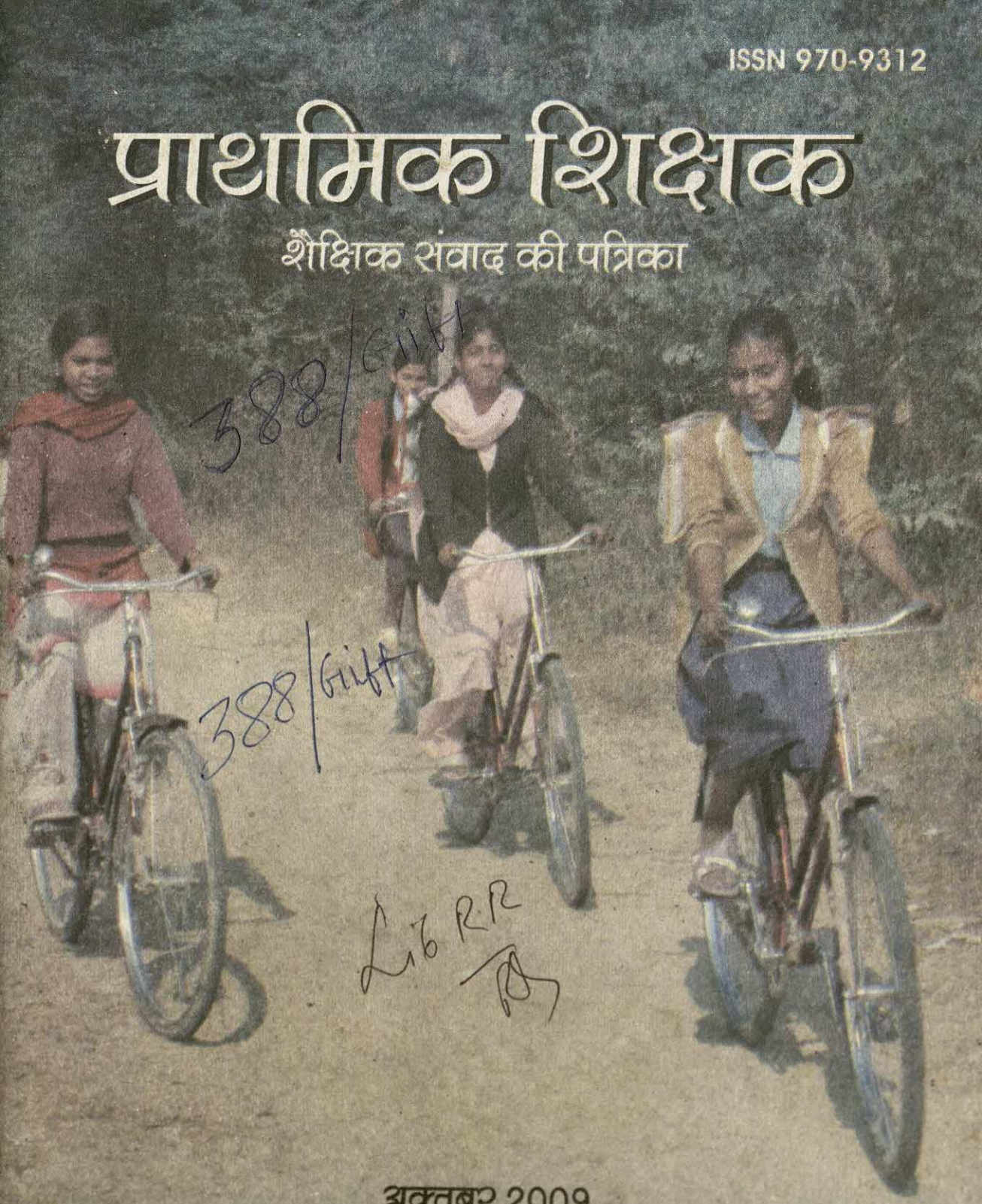

388/Gift

388/Gift

Library

अक्तूबर 2009

8. पुतलीकला - एक परंपरा श्रीमती वीना कुमार, एम.एस. राठौर 36

9. गृह-शिक्षक के रूप में अभिभावक पद्मा यादव 43

10. पाठ्यपुस्तकों से हटकर शिक्षा वि.वि. सिंह 48

11. बच्चों के वकील के.आर. शर्मा 53

12. शैक्षिक कार्यशाला - प्रत्यक्ष लाभ के सिद्धांत पर आधारित एक आखिरी समाधान रूपेंद्र सिंह चौहान 58

13. महेंद्र पास हो गया कृष्ण कुमार शुक्ल 64

पुस्तक के पन्नों से

14. हमारे विद्यालय में यह नहीं चलेगा गिजु भाई बधेका 68

कहानी

15. दिशा रमेश उपाध्याय 74

परख 79

परिषद् के समाचार 80

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में 85

बालमन कुछ कहता है

15. हमारे स्कूल का नाम राजन झा 86

16. मेरा सपना लावण्या वर्मा 87

17. बाल मन कुछ कहता है अमित कुमार जेबा 88

कविता

18. बच्चे के थोड़ा और पास जाओ महेश

संवाद

हर अभिभावक अपने बच्चे को लेकर अनगिनत सपने संजोता है। उसे अपने बच्चे से अनेक अपेक्षाएँ भी रहती हैं। इन्हीं अपेक्षाओं को पूर्ण करने के उद्देश्य से वे बच्चे को स्कूल भेजते हैं। स्कूल में शिक्षक भी बच्चों से बहुत-सी अपेक्षाएँ रखते हैं। वे चाहते हैं कि बच्चे समय पर स्कूल आएँ, अपना काम समय पर करें, कक्षा में अनुशासन बनाए रखें, ठीक से पढ़ें, परीक्षा में अच्छे अंक लाएँ, अंतर्विद्यालयी प्रतियोगिताओं में विजयश्री प्राप्त कर अपने विद्यालय का नाम ऊँचा करें और विद्यालय गाँव, कस्बे या शहर जहाँ कहीं भी स्थित है, उसकी अपनी पहचान बने। लेकिन इसी पहचान के चक्कर में कई बार शिक्षक यह भूल जाते हैं कि बच्चा भी स्वयं अपनी पहचान बनाना चाहता है। जिस प्रकार बड़ों को बच्चों से उम्मीदें रहती हैं उसी प्रकार बच्चों को भी बहुत-सी उम्मीदें अपने विद्यालय से भी रहती हैं और शिक्षकों से भी। पर क्या कभी आपने एक शिक्षक होने के नाते बच्चों के मन को टटोलने की कोशिश की है?

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में **बालमन कुछ कहता है** स्तंभ के माध्यम से बच्चों की इन्हीं अपेक्षाओं को पहचान देने की हमने कोशिश की है। कहीं ऐसा तो नहीं कि इस स्तंभ में बच्चों की लिखी बातों को देखकर आप इसके पन्नों को यूँ ही पलट देते हैं? दरअसल यह स्तंभ आपको बालमन के अंतस्तल तक पहुँचने का मौका देता है। और एक बार बालमन की गहराई में आप पहुँच गए तो आपके और बच्चे के बीच स्नेहिल नाता बनते देर नहीं लगेगी।

बालमन कुछ कहता है स्तंभ की शुरुआत जनवरी 2006 के अंक से की गई थी। अब तक के पन्नों पर नज़र डालें तो स्वत: स्पष्ट हो जाएगा कि नन्हा हृदय चाहता है शिक्षक की संवेदनशीलता, अपनापन और प्यार भरा व्यवहार। इससे आपको यह जानने में भी मदद मिलेगी कि शिक्षकों का कौन-सा व्यवहार कोमल मनों को आघात पहुँचाता है। यह स्तंभ अत्यंत सहजता से आपको यह जता देगा कि बच्चे पढ़ाई के अलावा खेलना भी चाहते हैं, उन्हें कौन से खेल पसंद हैं। कक्षा में कैसी व्यवस्था चाहते हैं, कैसा फर्नीचर उन्हें सुविधाजनक लगता है? किस प्रकार की टोका-टोकी उन्हें अच्छी नहीं लगती है आदि।

क्या साथी शिक्षकों ने बालमन की अपेक्षाओं की कसौटी पर स्वयं को परखा है? अभी कुछ दिन पहले एक बैठक के सिलसिले में राज्य शिक्षा केंद्र, भोपाल जाना हुआ। वहाँ एक

साथी शिक्षक ने बताया कि कुछ प्रशिक्षण कार्यक्रमों में **बालमन कुछ कहता है** स्तंभ का इस्तेमाल करते हुए इस पर चर्चा की गई। परिणाम बहुत सकारात्मक रहे। आपको यह जानकर सुखद आश्चर्य होगा कि कुछ नन्हे साथियों ने इस स्तंभ के लिए स्वयं अपने मन की बात लिखकर भेजी।

नन्हे-मुन्ने हमसे क्या चाहते हैं? इस पर गौर करना बेहद ज़रूरी है। ये हमसे चाहते हैं आत्मीयता भरा व्यवहार, हमारा थोड़ा-सा समय, सीखने-सिखाने का रोचक तरीका, पाठ्यपुस्तक के अलावा कक्षा में कविता कहानी की अन्य किताबें पढ़ने की छूट, कक्षा की चारदीवारी से निकलकर खुले मैदान में पढ़ना, कोई अच्छी-सी कहानी, अपनी बात अपने ढंग से कहने और करने की आज़ादी आदि। इनमें ऐसा कुछ भी तो नहीं है जो हम नहीं कर सकते हैं।

हम कक्षा में बहुत कुछ कर सकते हैं। बच्चों को कविता का अनिर्वचनीय आनंद दे सकते हैं, खेल-खेल में गणित सिखा सकते हैं। उन्हें किताबों की अनूठी दुनिया में ले जा सकते हैं। कैसे? जानने के लिए पढ़िए लेख **कविता का आनंद**, **पढ़ने का कोना** और **जादू के अंक या अंकों का जादू**।

आकलन शिक्षण प्रक्रिया का महत्वपूर्ण अंग है। कैसे करें आकलन कि सीखना बन जाए एक सुखद अनुभव। **प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों का सीखने का आकलन** लेख इस दिशा में आपकी मदद करेगा।

हम जैसी बच्चों से अपेक्षा करते हैं, बच्चे भी हमारी उम्मीदों की कसौटी पर वैसे ही उतरते हैं। **चूहों की कथा, बच्चों की व्यथा** लेख शिक्षक के दृष्टिकोण का बच्चों के परिणाम पर प्रभाव को दर्शाता है और सभी शिक्षक साथियों पर सकारात्मक रवैये को अपनाने की छाप छोड़ता है।

सभी शिक्षक बच्चों को अपना बना सकते हैं। बस आवश्यकता है थोड़े से प्रयासों की। प्रयास करने पर बालमन का स्पर्श होते देर नहीं लगेगी। एक बार आपने बच्चे के मन को समझ लिया तो विद्यालय में सीखना-सिखाना आपके और बच्चों दोनों के लिए ही बन जाएगा- आनंद से सराबोर एक यादगार अनुभव!

अकादमिक संपादक

बच्चों के लिए सीखना आनंदप्रद बन जाता है जब सीखने की संपूर्ण प्रक्रिया में वे भी बराबर के भागीदार हों। क्या किया जाए कि सीखना बच्चे के लिए सरस बन जाए? और साथ ही बने एक यादगार सुखद अनुभव। जानने के लिए पढ़िए एक शिक्षिका का अनुभव।

कविता का आनंद

लीसा मोहनन*
आभा पाण्डे**

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सीखने की प्रक्रिया में बच्चे की सहभागिता की संस्तुति करती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 यह सिफारिश भी करती है कि बच्चों को सिखाने और उनके आकलन की विधियाँ इस प्रकार की हों कि बच्चों के विद्यालयी जीवन के अनुभव सुखद बनें बजाय इसके कि सीखना उनके लिए दुरुह प्रक्रिया बनकर रह जाए। वास्तव में सीखने के दौरान बच्चे की भागीदारी निरंतर बनी रहे तो सीखना बच्चे को नीरस और उबाऊ नहीं लगता है बल्कि सीखने की प्रक्रिया उसके लिए आनंदमय बन जाती है और कुछ करते-करते वह कब बहुत कुछ सीख लेता है, इसका उसे स्वयं भी पता नहीं चलता।

बच्चों को सरस तरीके से कुछ सिखाने का प्रयास मैंने भी किया। मुझे बच्चों को अँग्रेज़ी की पाँचवीं कक्षा की पुस्तक 'मैरीगोल्ड V' से कविता 'आइस्क्रीम मैन' पढ़ानी थी। कविता पढ़ाने से पहले मैंने सोचा कि ऐसा क्या करूँ कि यह कविता सीखना बच्चों के लिए यादगार अनुभव बनकर रह जाए। बच्चों को आइस्क्रीम खाना बहुत अच्छा लगता है। आइस्क्रीम का नाम सुनते ही उनकी आँखों में चमक आ जाती है। बच्चों की आइस्क्रीम के प्रति इसी चाहत को दृष्टिगत रखते हुए विचार आया कि बच्चों को कविता के साथ कक्षा में आइस्क्रीम का रसास्वादन करा कर कविता का मज़ा दोगुना कर दिया जाए।

* प्राथमिक शिक्षिका, केंद्रीय विद्यालय, सेक्टर-4, आर.के.पुरम, नयी दिल्ली
** ए 234, गोविंदपुर कालोनी, इलाहाबाद-21004 (यह लेख मूलत: अँग्रेज़ी में था। इसका हिंदी अनुवाद आभा पाण्डे द्वारा किया गया है।)

बस फिर क्या था। झट आइस्क्रीम का ऑर्डर दे डाला। और कविता शुरू करने से पहले कक्षा में घोषणा की- 'बच्चों, आज तुम्हारे लिए सरप्राइज़ पार्टी है।' बच्चे भौंचक्क कि सरप्राइज़ पार्टी और वह भी कक्षा में? तभी दूसरी घोषणा की- 'और यह पार्टी है आइस्क्रीम पार्टी।' बच्चे खुशी से उछल पड़े। जुलाई की उमस भरी गर्मी में आइस्क्रीम खाने को मिल जाए तो क्या कहने! रंग-बिरंगी तरह-तरह के मीठे स्वादों वाली आइस्क्रीम का मज़ा बच्चों ने जब ले लिया तो मैंने कविता पढ़ी। बच्चों ने भी कविता दो-दो के जोड़े में तथा समूह में पढ़ी। इसके बाद आइस्क्रीम के विभिन्न रंगों, स्वादों तथा ब्रांडों पर उन्होंने चर्चा की। फिर आइस्क्रीम किस मौसम में सबसे अधिक बिकती है, गर्मी में बच्चे और क्या-क्या गतिविधियाँ करते हैं, इस पर बच्चों ने आपस में बातें कीं। इसके बाद बच्चों ने अपने मनपसंद आइस्क्रीम के चित्र बनाए, उनमें रंग भरे, उनके ब्रांडों के नाम लिखे। अपनी मनपसंद आइस्क्रीम का चित्र बनाकर उसके बारे में कुछ वाक्य भी लिखे। बच्चों ने समूह में कार्य करते हुए आइस्क्रीम के रैपर, चम्मच और स्टिक से सुंदर-सुंदर कोलाज बनाए। बच्चों को घर पर विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं से आइस्क्रीम के विज्ञापन एकत्रित करने का कार्य दिया गया। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 कक्षा की दुनिया को बाहर की दुनिया से जोड़ने की बात को ध्यान में रखते हुए बच्चों से कहा गया कि वे मालूम करें कि उनके घर तथा स्कूल के आस-पास के क्षेत्र में किस-किस कंपनी/ब्रांड की आइस्क्रीम मिलती है, कौन से फ्लेवर की आइस्क्रीम ज़्यादा बिकती है, इनके दाम क्या-क्या हैं? एकत्रित की गई जानकारी के आधार पर बच्चों से रिपोर्ट लिखने को कहा गया।

सभी बच्चों ने इन सब गतिविधियों में अत्यंत उत्साह से भाग लिया। चर्चा के दौरान प्रत्येक बच्चा अपनी बात सबसे पहले कहने को आतुर होता था। बच्चों की झिझक खुली, चर्चा के दौरान खूब सुनने-बोलने का अवसर मिला, मौखिक, लिखित, सृजनात्मक सभी प्रकार की अभिव्यक्ति के अवसर बच्चों को व्यक्तिगत

तथा सामूहिक दोनों ही रूप से मिले, स्वयं कुछ करने के भी अवसर प्राप्त हुए जिससे आत्मविश्वास में वृद्धि हुई। आइस्क्रीम खाते, आइस्क्रीम पर बातें करते कविता कब सीख ली यह बच्चे जान भी न पाए। एक अच्छी कविता उससे भी अधिक अच्छे ढंग से बच्चे सीख गए।

वास्तव में सीखना आनंददायक, शीघ्र और स्थायी बन जाता है जब बच्चे अवसर पाकर प्रेरित होते हैं और स्वयं कुछ सीखने को उत्सुक होते हैं। कक्षा का सरस माहौल बच्चे के लिए सीखना सरल और सरस बनाता है। कक्षा का आनंदमय वातावरण बच्चे और शिक्षक के बीच भी स्नेहिल रिश्ता बनाता है।

***

परख स्तंभ में पूछे गए प्रश्नों के उत्तर

बाएँ से दाएँ

1. यमक
5. जातक
7. रज़िया
9. कला शिक्षा
10. दिवास्वप्न
14. सूफी
15. भास
17. रवींद्रनाथ ठाकुर
18. सामवेद
19. नरीमन

ऊपर से नीचे

1. यशपाल
2. महाभारत
3. कर्ण
4. शिक्षक दिवस
6. रामानुजम
8. बाल
11. मैसूर
12. मैराथन
13. शैली
16. कोठारी

बच्चों में पढ़ने की ललक जगाने के लिए कक्षा में प्रिंट समृद्ध वातावरण अत्यंत आवश्यक है। कक्षा में पढ़ने का कोना बच्चों में पढ़ने की सहजात प्रवृत्ति को उभारने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। किताबों से भरा यह कोना बच्चों को अपनी ओर तो खींचेगा ही साथ ही उन्हें किताबों की दुनिया से परिचित कराते हुए एक स्थायी पाठक बनने की ओर ले जाएगा।

पढ़ने का कोना

*मीनाक्षी खार**

पढ़ने के सफ़र की शुरुआत बच्चों को उनकी आयु, परिवेश और रुचि के अनुरूप पुस्तकें उपलब्ध कराने और उन्हें पढ़ने के अवसर देने से होती है। इस प्रक्रिया को साकार करने के लिए पुस्तकों और कई तरह की पठन सामग्री का बच्चों के पास होना ज़रूरी है क्योंकि इस सामग्री से जब बच्चों का सामना होता है तो वे अनुमान के आधार पर या अन्य कई तरीकों द्वारा अर्थ का निर्माण करते हैं और स्वावलंबी पाठक बनते हैं। पढ़ने की इस प्रक्रिया का जो सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा नज़र आता है वह है बच्चों के पास प्रचुर मात्रा में पठन सामग्री और पढ़ने के अवसरों का उपलब्ध होना। अब बात आती है प्यार से संजोयी हुई किताबों को सुव्यवस्थित ढंग से प्रदर्शित करने की। ऐसा इसलिए भी करना ज़रूरी है क्योंकि शुरुआती दौर में बच्चों को पुस्तकें उपलब्ध करवाने के साथ-साथ पुस्तकों के प्रति आकर्षण पैदा करना ज़रूरी है। धीरे-धीरे वे किताबों के ढेर में से भी अपने लिए किताबें चुनने लगेंगे। पुस्तकों के प्रति आकर्षण पैदा करने के लिए कक्षा 1 और 2 में 'रीडिंग कॉर्नर' बनाना पहला और उपयुक्त कदम होगा। इसके लिए आवश्यक है कि अध्यापक कक्षा की बनावट को समझें और एक ऐसा कोना कक्षा में ढूँढे जहाँ -

1. किताबें रखने एवं प्रदर्शित करने की सुविधा हो।
2. बच्चों के लिए बैठकर पढ़ने की व्यवस्था हो।

क्यों चाहिए रीडिंग कॉर्नर कक्षा I और II में

- कक्षा 1 और 2 में 'रीडिंग कॉर्नर' बनाना एक नीतिगत निर्णय है। इसकी अवधारणा पुस्तकालय से भिन्न है क्योंकि-

– आरंभिक कक्षाओं में पढ़ने को एक सार्थक प्रक्रिया बनाना अत्यंत आवश्यक है। पढ़ने और लिखने की एक सार्थक कक्षा ही बच्चों को स्वावलंबी पाठक बनाएगी और साथ ही स्कूल में ठहराव को बढ़ाएगी।

* प्रवक्ता, भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली

इसके अलावा कक्षा में रुचिकर पुस्तकों की उपस्थिति बच्चों में कक्षा-कक्ष, सहयोगियों और शिक्षक के प्रति आत्मीयता जागृत करेगी।

– यह 'रीडिंग कॉर्नर' भले ही एक छोटे पुस्तकालय जैसे दिखें परंतु यह पुस्तकालय से भिन्न हैं। यह पुस्तक कोना बच्चों का अपना है और उनकी हीं कक्षा में है, जहाँ पुस्तकें अलमारी में ताले में बंद नहीं बल्कि बच्चों की पहुँच के भीतर प्रदर्शित हैं। बच्चों को वहाँ बैठने, स्वयं पुस्तकें चुनने, पढ़ने की पूरी स्वतंत्रता है। इसके साथ ही यहाँ रखी किताबें, पाठ्यक्रम के साथ-साथ रोज़ के पढ़ने-लिखने की गतिविधियों का एक अभिन्न अंग है। इसको सुव्यवस्थित रखने की ज़िम्मेदारी भी उनकी है। हम यह भली-भाँति जानते हैं कि इस कोने से बच्चे आत्मीय संबंध जोड़ लेते हैं और भविष्य में यह कोना ही उन्हें स्कूल के पुस्तकालय में जाने के लिए उत्साहित करेगा, शांति से समझ के साथ पढ़ने के लिए तैयार करेगा।

यह कोना बहुत कुछ कहता है

- पुस्तक कोना बच्चों को भावी पाठक बनाने की क्षमता रखता है।
- पुस्तक कोना बच्चों को आरामदायक और अनुकूल जगह पर बैठकर पुस्तकें पढ़ने के लिए आमंत्रित करता है।
- बच्चे स्कूल के शुरुआती दौर में ही पढ़ने की अहमियत को समझने लगते हैं।
- उन्हें ऐसा एहसास होने लगता है कि यह वह कोना है जहाँ पढ़ने और जानने के लिए बहुत कुछ है।
- पुस्तक कोने में बैठकर बच्चों को पठन सामग्री को इत्मीनान से पढ़ने, उस पर सोचने, बातचीत करने और प्रतिक्रिया व्यक्त करने की छूट रहती है।
- यह वह भी कोना है जहाँ पढ़ने से उभरी प्रतिक्रियाएँ पाठक की निजी रहती हैं उन्हें औरों के साथ बाँटना या प्रदर्शित करना ज़रूरी नहीं। सच तो यह है कि पढ़ने को लेकर मन में उपजी बातें कभी-कभी भविष्य की परियोजनाओं के बीज भी बो देती हैं।

बातें 'रीडिंग कॉर्नर' के रख-रखाव की

- 'रीडिंग कॉर्नर' शिक्षक और बच्चों के सहयोग से बनवाएँ।
- इस कोने में नवीनता लाने के लिए आप इसका एक नाम रख सकते हैं, समय-समय

पर पुस्तकों की व्यवस्था बदली जा सकती है, उन्हें अलग ढंग से प्रदर्शित किया जा सकता है।।

- यहाँ बच्चों द्वारा पढ़ी गई कहानियों पर बनाए गए चित्र भी लगाए जा सकते हैं।
- पेंसिल, कागज़, चार्ट पेपर, रंग जैसी सामग्रियाँ, चित्र बनाने, रंग भरने, कुछ लिखने के लिए भी यहाँ रखी जा सकती हैं।
- नई किताबों, पत्रिकाओं और अन्य लिखित सामग्री को 'कार्नर' में जोड़ने की योजना बनाएँ।
- इस कोने की व्यवस्था की ज़िम्मेदारी बच्चों को सौंपिए।

कुछ बातें शिक्षकों से

- 'रीडिंग कॉर्नर' बच्चों में पढ़ने की क्षमता और उत्साह बढ़ाने के लिए स्थापित किए गए हैं। बच्चों को वहाँ जाने से मत रोकें।
- सभी बच्चों को स्वतंत्र रूप से पुस्तक कोने में बैठकर पढ़ने का अवसर दें।
- इस कोने को कक्षा के पठन-पाठन कार्यक्रम से जोड़ते हुए भी बच्चों को कोने का इस्तेमाल करने की स्वतंत्रता दें। किताबों से संबंधित उनकी प्रतिक्रियाओं को सुनने का समय निकालें और सम्मान दें।
- इस कोने की गतिविधियों को परीक्षा के दायरे से मुक्त रखें।

- बच्चों को मिलकर छोटी-छोटी किताबें स्वयं बनाने के लिए उत्साहित करें।
- बच्चों के द्वारा बनाए चित्रों और कहानियों से बनी ये किताबें 'रीडिंग कॉर्नर' में शामिल करें।
- आप स्वयं भी इस 'रीडिंग कॉर्नर' के पाठक बनें।

उत्तर प्रदेश मथुरा जिले के विद्यालयों में 'रीडिंग कॉर्नर'

1. कक्षा I और II में 'रीडिंग कॉर्नर' स्थापित किए गए हैं।
2. कक्षा का एक ऐसा कोना 'रीडिंग कॉर्नर' प्रारंभिक कक्षाओं में जहाँ किताबें रखने और बच्चों के बैठकर पढ़ने की जगह हो।
3. परियोजना विद्यालयों में किताबों को रखने के लिए अलग रैक उपलब्ध करवाए गए हैं।
4. 'रीडिंग कॉर्नर' में चटाई और छोटी-छोटी मेज़ हैं, जहाँ अपनी सुविधा से निर्भय होकर बच्चे पढ़ें, बातचीत करें।
5. कक्षा I और II के बच्चों के लिए चयनित हिंदी बालसाहित्य की पुस्तकों के दो सेट 'रीडिंग कॉर्नर' में बच्चों की पहुँच के भीतर प्रदर्शित हैं।
6. प्रत्येक कक्षा में क्रमिक पुस्तकमाला 'बरखा' के दो सैट हैं जिसमें से बच्चे अपनी रुचि और स्तर के अनुसार पुस्तकें चुन सकते हैं।

***

पढ़ने की संस्कृति के विकास के क्रम में वैयक्तिक पठन को प्रोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है और शिक्षकों को इस संस्कृति का हिस्सा बनकर स्वयं उदाहरण पेश करना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पृष्ठ सं. 47

एन.सी.ई.आर.टी. के रीडिंग डेवलपमेंट सैल द्वारा पहली और दूसरी कक्षा के लिए क्रमिक पुस्तकमाला–बरखा का विकास किया गया है। बच्चों के लिए सरल और सरस भाषा में लिखी गई बरखा की चालीस कहानियाँ बच्चों के रोज़मर्रा के अनुभवों पर आधारित हैं। ये कहानियाँ बच्चों को अनुमान लगाकर पढ़ने का अवसर देती हैं। बच्चों के जीवन से जुड़ी बरखा की कहानियों की एक विशेषता यह है कि इनमें हमारा समाज झलकता है। यही झलक प्रस्तुत कर रहा है यह लेख।

क्रमिक पुस्तकमाला बरखा – एक सामाजिक झरोखा

लता पाण्डे*

बच्चों में पढ़ने की ललक कुदरती होती है। उनके चारों ओर बिखरा भाषायी संसार उनमें पढ़ने के प्रति उत्सुकता जगाता है। घर में, गली-चौबारों में, सड़क पर, स्कूल में, बाज़ार की गहमा-गहमी में ऐसी बहुत-सी चीज़ें हैं जो बच्चे को पढ़ने के लिए प्रेरित करती हैं। दीवारों पर टंगे कैलेंडर, टेलीविज़न पर आने वाले विज्ञापन, आस-पास लगे तरह-तरह के पोस्टर, साइन बोर्ड, रास्ते में चलती बसों पर लिखे स्थानों के नाम और नंबर, ट्रकों पर लिखी इबारतें, बड़े-बड़े आकर्षक इश्तहार, पत्र-पत्रिकाओं में छपे शब्द देख नन्हा बच्चा अनुमान लगाकर उन्हें पढ़ने का प्रयास करता है। अनुमान लगाकर पढ़ना बच्चे के लिए तब सरल हो जाता है जब उसे अपने परिवेश तथा अनुभव से जुड़ी कोई चीज़ पढ़ने का अवसर मिले। और यही सुनहरा अवसर दे रही है राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा प्रकाशित क्रमिक पुस्तकमाला – बरखा।

भारत विविधताओं का देश है। विभिन्न भाषाएँ, धार्मिक विश्वास, अनेक वर्ग, जाति आदि से मिलकर बने इस देश की निराली सामाजिक-सांस्कृतिक रंगत है। भारत के इन्हीं रंगों की झलक **बरखा** की चालीस कहानियों के दर्पण में बड़ी ही सुंदरता से झलकती है। **बरखा** आज के बच्चों के जीवन को प्रतिबिंबित करने वाली और भारत के समाज की विविधताओं को समेटने वाली पुस्तकमाला है। **बरखा** की चालीस कहानियाँ पाँच कथावस्तुओं में पिरोई गई हैं – रिश्ते, पशु-पक्षी, कीट-पतंगे, वाद्य-यंत्र, खेल-खिलौने, आस-पास, खाने की चीज़ें। इस प्रकार कहानियों का ताना-बाना बच्चों के परिवेश और उनके रोज़मर्रा के अनुभवों के इर्द-गिर्द बुना गया है और यह परिवेश भारतीय समाज

* रीडर, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016

को बखूबी प्रतिबिंबित करता है। **बरखा** आज के बच्चों के जीवन को प्रतिबिंबित करने वाली और भारत के समाज की विविधताओं को अपनी चालीस कहानियों में समेटने वाली पुस्तकमाला बनी है। इस सामाजिक झरोखे में से बच्चों का समाज अत्यंत खूबसूरती से नज़र आता है। **बरखा** के सभी पात्र नन्हे-मुन्ने हैं जो इस पुस्तकमाला के पाठक बच्चों की ही उम्र के हैं। कहानियों को रचते समय इस बात का भी ध्यान रखा गया है कि प्रत्येक कहानी ऐसी छोटी-सी चीज़ या घटना पर आधारित हो जो इस उम्र के बच्चों को अच्छी लगती हो।

रिश्ते-कथावस्तु की कहानियों में भारतीय परिवारों की छटा देखते ही बनती है। इसमें एक ओर जहाँ रिश्तों की मिठास है वहीं पशु-पक्षियों से भी अंतरंग नाता है। रमा और रानी दो बहनें हैं जिनके दैनिक जीवन पर आधारित कहानियों में यह बिंदु उभरता है कि बच्चे अपने आस-पास मौजूद हरेक चीज़ और इंसान से बराबर का रिश्ता महसूस करते हैं और उनसे जुड़ी हर छोटी से छोटी बात पर ध्यान देते हैं। रमा और रानी जहाँ बचपने से भरपूर हैं वहीं नानी का चश्मा खो जाने पर जिस व्यग्रता से वे चश्मा ढूँढ़ने का प्रयास करती हैं, वह भी हमारे बुजुर्गों के प्रति आदर, संवेदनाशीलता जैसे सामाजिक मूल्य का परिचायक है। स्नेह स्वरूप उपहारों का आदान-प्रदान हम करते हैं। बरखा के पात्र भी इससे अछूते नहीं हैं। अनूठी बात यह है कि उपहार खरीदते समय बरखा के नन्हे पात्रों के मानस पटल पर अपने अन्य साथियों के साथ पालतू कुत्ते, बकरी की भी तस्वीर उभर आती है। **मिली के लिए क्या लूँ?** कहानी अत्यंत सुंदरता से इसे अभिव्यक्त करती है।

खेल हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। कई खेल हमारे देश में परंपरा से चले आ रहे हैं। **गुल्ली डंडा**, **छुपन-छुपई**, **आउट**, कहानियाँ बच्चों को खेलों की दुनिया में ले जाती हैं जहाँ जीत और बबली, दो दोस्त कुछ-न-कुछ खेलने में लगे रहते हैं।

बच्चों को झूला झूलने का बहुत शौक होता है। आस-पास नज़र डालें तो कहीं गेट पर, तो कभी पेड़ पर टायर लटका कर, तो कभी पेड़ की डाल से लटकते झूलते बच्चे मिल ही जाएँगे। बरखा की कहानियों के बच्चे भी इस प्रकार के झूलों का आनंद उठाते हैं।

बच्चे बड़ों की तरह बनना चाहते हैं। **तबला** कहानी जीत की अपने पिता की तरह तबला बजाने की चाहत को बयाँ करती है वहीं नन्हे जीत की तबला बजाने की कला को स्वयं सीखने की चाह का मूल्य भी स्थापित करती है।

बरखा के माध्यम से हमारे समाज से धीरे-धीरे विलुप्त होती जा रही कई बातों को पुनःस्थापित करने का प्रयास भी किया गया है। **चलो पीपनी बनाएँ** कहानी जहाँ नन्हे पाठकों को आम की गुठली को घिसकर पीपनी बनाना सिखाती है वहीं कई पाठकों में अपने बचपन की याद ताजा कर जाती है जब वे आम चूसने के बाद गुठली से पीपनी बनाकर बजाया करते थे।

जमाल भी रोटी बनाना चाहता था।

भला किस भारतीय घर में बच्चे माँ के खाना बनाते समय रसोई में घुसकर आटा सानने या लोई माँगकर रोटी बेलने की कोशिश नहीं करते? **मीठे-मीठे गुलगुले** और **फूली रोटी** कहानी में भारतीय रसोई की झलक तो है ही, मीठे गुलगुलों का स्वाद और फूली रोटी की सोंधी महक भी है। **गोलगप्पे** कहानी किसी भी गली मोहल्ले के चाटवाले के ठेले की तस्वीर पेश करती है और पाठक बच्चों के मुँह में भी चटपटे गोलगप्पों के स्वाद को याद कर पानी ले आती है।

शहरों में भले ही अधिकतर घरों में आटा (पिसा गेहूँ) ही खरीदा जाता है। पर हम में से बहुतों ने बचपन में आँगन में या खाट पर धोकर सुखाने को डाले गीले गेहूँ से तरह-तरह की आकृतियाँ बनाकर खेल जरूर किए हैं। आज भी गाँव-कस्बों, शहरों के कुछ घरों में गेहूँ लाकर पिसवाया जाता है। कहानी **गेहूँ** में जमाल और मदन भी आँगन में सूखने के लिए डाले गेहूँ से खेलते हैं।

हमारे समाज में, हमारी संस्कृति में अतिथि को देवता की संज्ञा दी गई है। बच्चे स्वयं तो खाने-पीने के शौकीन होते हैं घर में बड़ों के न रहने पर अतिथि के आने पर उसकी खातिरदारी करना भी खूब जानते हैं। **भुट्टा** कहानी जमाल और मदन के इसी आतिथ्य को दर्शाती है। **चाय** कहानी में जमाल का जुकाम से पीड़ित मदन के लिए अदरक वाली चाय बनाना उसकी संवेदनशीलता को व्यक्त करता है। बच्चों का कल्पना संसार बड़ा ही निराला होता है। जो कुछ वे करते हैं उनकी कल्पना में पशु-पक्षी भी वैसा ही करते हैं। मिठाई बच्चों को बहुत भाती है। इसलिए **मिठाई** कहानी में यदि गधे का भी मिठाई खाने का मन है, तो इसमें आश्चर्य की कौन-सी बात है?

बरखा में भारतीय समाज की विहंगम झांकी दिखती है। आँगन में अलगनी में सूखते कपड़े हैं, **पीलू की गुल्ली** में गाय के बछिया होने पर रमा-रानी की पीलू गाय की देखभाल में हाथ बँटाने और बछिया गुल्ली को प्यार से सहलाने का चित्रण है, बगीचे में पेड़ पर लगे आम हैं, झूला है, तितली के पीछे दौड़ते, गुब्बारों से खेलते बच्चे हैं, पिकनिक के दौरान पत्तल पर खाना परोसना है, ये सब हमारे समाज के ही तो अलग-अलग चित्र हैं। भारत में बहुत तेज़ी से आर्थिक, सामाजिक परिवर्तन आ रहे हैं। बच्चों को नए संदर्भों से जोड़ने और उनमें नए युग की चेतना जगाने का प्रयास इस पुस्तकमाला की कहानियों में किया गया है। ***बरखा*** की कहानियों में एक बदलता हुआ सामाजिक परिवेश भी है जिनमें कुछ वर्ष पहले तक जो चीज़ें संभव नहीं थीं और आज संभव लग सकती हैं वे शामिल हैं **मिली के बाल**, **मिली की साइकिल** कहानियाँ मिली के माध्यम से आज की भारतीय लड़की की तस्वीर प्रस्तुत करती है जो अपनी तरह जीना चाहती है।

इस सामाजिक झरोखे में से बच्चों का समाज बखूबी झलकता है। कहानियों को रचते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा गया है कि प्रत्येक कहानी ऐसी छोटी-सी चीज़ या घटना पर आधारित हो जो इस उम्र के बच्चों को बहुत अच्छी लगती है। घटनाओं को बच्चों की ही नज़र से विस्तारित किया गया है। ज़मीन पर शरबत गिर जाने पर बच्चे बड़ों की तरह सफाई करने के लिए व्यग्र नहीं रहते बल्कि उसमें तरह-तरह की आकृतियाँ देखते हैं, एक-दूसरे को दिखाकर मज़ा लेते हैं। यही मज़ा दे रही है कहानी **शरबत**।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 सभी मूल्यों की जड़ में सामाजिक सद्भाव एवं शांति को चिह्नित करती है। शांतिपरक मूल्यों के विकास में भाषा की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भाषा किसी भी संस्कृति में मूल्यों को बनाए रखने का काम करती है। बरखा की कहानियों के नन्हे-मुन्ने पात्र एक-दूसरे के साथ मिलकर खाते हैं, खेलते-कूदते हैं, मिलकर पशु-पक्षियों की देखभाल करते हैं। मूल्य जीवन के सामान्य संदर्भों से उभरते हैं।

बच्चे का परिवेश ही उसकी भाषा को गढ़ता है। बच्चे के उच्चारण और शब्दावली पर परिवेश का प्रभाव होना स्वाभाविक है। यही शब्दावली बच्चे को जब पढ़ने को मिलती है तो किताब से उसका नाता जुड़ते देर नहीं लगती। छुपन-छुपाई कहानी का एक वाक्य देखिए - नाजिया ने ऊपर से कूदकर उसे धप्पा

उस दिन जीत की बारी थी।

कर दिया। 'धप्पा' शब्द छुपन-छुपाई खेल के दौरान इस्तेमाल होने वाला आम बोल-चाल का शब्द है। इस प्रकार कहानियों की भाषा बच्चों की अपनी भाषा है। इससे बच्चों को मौखिक और लिखित भाषा के बीच तालमेल बैठाने में मदद मिलेगी। साथ ही बोली हुई बात की लिखित अभिव्यक्ति कैसे की जाती है, इससे भी नन्हे पाठक बड़ी सहजता से अवगत हो जाएँगे।

बरखा पुस्तकमाला रंग-बिरंगे मनभावन चित्रों से सराबोर है। चित्रों में भारतीय समाज पसरा हुआ है। इन चित्रों में घर, आँगन, पेड़-पौधे, खेल-खिलौने, कीट-पतंगे, पशु-पक्षी तो हैं ही रिश्तों की मज़बूत डोर भी गुँथी है।

भारत जैसी विविध और जटिल सामाजिक संरचना को प्रस्तुत करना किसी चुनौती से कम नहीं था। बरखा इस कसौटी पर खरी उतरती है।

***

कक्षा में चल रही सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण भाग है– आकलन। आकलन न केवल बच्चों की सीखने की गति एवं उनकी उपलब्धि की जानकारी देता है बल्कि शिक्षक को शिक्षण प्रक्रिया में सुधार के संकेत भी देता है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा प्राथमिक स्तर की कक्षाओं के लिए आकलन स्रोत पुस्तिकाओं (विषय – हिंदी, अँग्रेज़ी, गणित, पर्यावरण अध्ययन, कला शिक्षा) का विकास किया गया है। हिंदी विषय के लिए आकलन स्रोत पुस्तिका से एक अंश दिया जा रहा है जिसमें भाषा सीखने का आकलन और आकलन के तरीके शामिल हैं।

प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों का भाषा सीखने का आकलन

प्राथमिक कक्षाओं में आकलन, सीखने की प्रक्रिया का एक हिस्सा होता है जो हमें यह समझने में मदद करता है कि शिक्षण किस प्रकार का हो। अत: आकलन रोज़ की गतिविधियों के साथ स्वाभाविक रूप से किया जाना चाहिए। हम सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को एक जीवंत प्रक्रिया तभी बना सकते हैं जब हम बच्चों को सीखने के ढेर सारे अवसर दें और बच्चे अपने स्तर के अनुरूप सीख रहे हैं या नहीं– इस बात का सतत् आकलन करते चलें। आकलन के साथ-साथ जब हम उन कठिनाइयों के बारे में पता करते चलेंगे जो बच्चों के सीखने में बाधक बन रही हैं, तभी हम सीखने की प्रक्रिया को सुधारने का प्रयास कर सकेंगे।

बच्चों का आकलन मात्र बच्चों का आकलन नहीं होता। जब शिक्षक कक्षा में आकलन करते हैं तो एक तरह से वे स्वयं अपना आकलन कर रहे होते हैं। यदि कक्षा के ज़्यादातर बच्चे सीख रहे हैं तो निश्चित ही शिक्षक बधाई के पात्र हैं। यदि नहीं सीख पा रहे हैं तो शिक्षक को सोचना चाहिए कि बच्चों को सिखाने के तरीकों को और प्रभावी किस तरह बनाएँ।

आकलन बच्चों और शिक्षकों के बारे में ही कुछ नहीं कहता बल्कि पूरी शिक्षण प्रणाली के बारे में हमें बहुत कुछ बताता है। यदि कई शिक्षक यह पाते हैं कि भरसक प्रयास के बावजूद भी बच्चे कोई कौशल प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं तो पाठ्यवस्तु के शिक्षण, प्रशिक्षण और पाठ्यक्रम के विषय में सोचना आवश्यक होगा। इस तरह आकलन गुणात्मक सुधार की प्रकिया का एक अभिन्न अंग है। आकलन के आधार पर ही हम यह जान सकते हैं कि हम कहाँ तक पहुँचे हैं और अभी कितनी दूर आगे जाना है।

आकलन – सीखने का एक साधन

हमारा उद्देश्य है– सभी बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करना और प्रत्येक बच्चे की क्षमता, उम्र और स्तर को ध्यान में रखते हुए उसे एक निश्चित स्तर तक पहुँचाना। इस उद्देश्य को पूरा कर पाने के लिए हम आकलन को सीखने के एक साधन के रूप में देखते हैं। सिर्फ़ यह पता लगा लेना या जाँच कर लेना पर्याप्त नहीं है कि कितने बच्चों का शैक्षिक स्तर क्या है, आकलन के द्वारा बच्चों का आपस में सीखना-सिखाना, प्रभावी बनाना ही मुख्य उद्देश्य है। यानी कि आकलन को हम सीखने के उपकरण (learning tool) के रूप में महत्त्व देते हैं, मात्र बच्चों की उपलब्धि स्तर जानने के उपकरण (testing tool) के रूप में नहीं।

आकलन की अवधारणा

आकलन के द्वारा बच्चों के उपलब्धि-स्तर का अनुमान लगाते हैं। यदि हम भाषा की बात करें तो हम जानना चाहेंगे कि बच्चे कितना पढ़ पाते हैं, कैसे पढ़ पाते हैं? रुक-रुक कर या प्रवाह में पढ़ते हैं, भाषा को सुनकर कितना समझते हैं, कितने आत्मविश्वास के साथ अपनी बात कह पाते हैं, लिखित रूप में अपनी अभिव्यक्ति कर पाते हैं आदि। आकलन से हमें बच्चों की सीखने की गति को सरसरी तौर से नहीं परंतु गहराई से समझना है। जैसे, अगर वे ठीक से पढ़ नहीं पा रहे तो उसकी क्या वजह है? क्या वे कुछ अक्षरों को पहचानने में कमज़ोर हैं या उनमें शब्दों और वाक्यों को एक सार्थक इकाई के रूप में पढ़ने की आदत नहीं पड़ सकी, या हिज्जे करके पढ़ने की आदत की वजह से वे अर्थ समझ नहीं पाते, आदि। यह जानकारी शिक्षक के अपने उपयोग के लिए है। वे अपने बच्चों को समझेंगे, उनके सीखने में आने वाली कठिनाइयों को पहचानेंगे, इन कठिनाइयों को दूर करने के हल निकालेंगे। फिर तरह-तरह की गतिविधियों एवं अभ्यासों द्वारा या अन्य तरीकों से सीखने के लिए बच्चों को प्रेरित करेंगे। अर्थात् आकलन के द्वारा शिक्षक बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में मदद करेंगे, मात्र उनकी उपलब्धियों को परखेंगे नहीं।

अब आप समझ गए होंगे कि क्या करना है, यानी बच्चों के स्तर को जानकर और उनकी कठिनाइयों को पहचान कर सुधारात्मक कदम उठाना है। मात्र नंबर देकर उन्हें किसी श्रेणी में डालकर संतुष्ट नहीं हो जाना है। आकलन की प्रक्रिया के अंतर्गत शिक्षक बच्चों के नहीं सीख पाने के कारण ढूँढ़ेंगे, उन पर विवरणात्मक टिप्पणी लिखेंगे जिससे यह स्पष्ट होगा कि सीखने-सिखाने की पिछली प्रक्रिया से बच्चों ने क्या सीखा और आगे की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया कैसी होनी चाहिए।

आकलन की प्रक्रिया की एक और विशेषता यह है कि हम प्रत्येक बच्चे की प्रगति की तुलना उसकी अपनी पिछली स्थिति से करेंगे, दूसरे बच्चों की प्रगति से नहीं। इसके पीछे कारण यह है कि सभी बच्चों के सीखने की गति एवं समझ विकसित करने का समय एक-सा नहीं होता। कुछ बच्चे जल्दी पढ़ने - समझने और बोलने लगते हैं पर कठिन अवधारणाएँ समय आने पर ही समझते हैं।

कुछ समझ जल्दी लेते हैं पर लिखने के प्रारंभिक दिनों में कठिनाई महसूस करते हैं। परंतु ध्यान रहे कि हमें कुछ ही अर्थात् जल्दी सीखने वाले बच्चों को ही नहीं सिखाना है बल्कि, हर एक बच्चे को सीखने के लिए प्रेरित करना है। इसके लिए शिक्षक को बच्चों की विभिन्नताओं को ध्यान में रखते हुए सभी को सीखने के अवसर देने होंगे।

आकलन योजना

प्राथमिक कक्षाओं के लिए विकसित नए पाठ्यक्रम– नई शिक्षण पद्धति की भावना के अनुरूप आकलन को एक योजनाबद्ध तरीके से सभी शिक्षकों को बनाना चाहिए। इस योजना की रूपरेखा आपके स्थान विशेष की ज़रूरतों के अनुरूप कुछ इस प्रकार हो सकती है–

- शिक्षक वर्ष भर सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान कक्षा के सभी बच्चों का लगातार अवलोकन करें और साथ-साथ सुधारात्मक प्रयास करते रहें;
- औपचारिक रूप से आकलन एवं रिकॉर्डिंग, वर्ष में तीन बार चार-चार माह के अंतराल पर कर सकते हैं;
- आकलन गतिविधि–आधारित तरीके से ही करें। बच्चों से तरह-तरह की गतिविधियाँ करा कर उनके शैक्षिक स्तर की जानकारी लें;
- आकलन के दौरान शाला या कक्षा का माहौल अन्य दिनों की ही तरह बिल्कुल सामान्य रहे। जिस सरल ढंग से सीखना-सिखाना चलता है– गतिविधि, बातचीत, प्रश्न-उत्तर, चर्चा, अवलोकन आदि, वैसे ही आकलन चलता रहे;
- एक बार में सभी बच्चों को ध्यान से देखना और आकलन तथा सुधार की दृष्टि से बारीकियाँ नोट करना कठिन होगा इसलिए शिक्षक एक बार में 5-6 बच्चों पर ध्यान केंद्रित कर सकते हैं। आकलन बच्चों को टोलियों में बिठा कर या अलग-अलग तरीके से किया जा सकता है। आकलन रिकार्ड करने के लिए प्रत्येक कक्षा के लिए शिक्षक एक आकलन-रजिस्टर बनाएँ जिसमें कम-से-कम एक पन्ना तो हर बच्चे के लिए हो। यह रजिस्टर हमेशा शाला में रहे जिससे बच्चों के माता-पिता जब चाहें बच्चों की प्रगति देख पाएँ;
- हर बच्चे का रिकॉर्ड नोट करें जिसकी टिप्पणियाँ स्पष्ट, सटीक और विश्लेषणात्मक हों और बच्चों को सिखाने के प्रयासों के लिए उनका उपयोग हो सके। प्रत्येक चरण में सभी बच्चों के आकलन के बाद सुधार की दृष्टि से आकलन-प्रपत्र में से महत्वपूर्ण जानकारी निकाली जाए जैसे, किस बच्चे को सीखने में कौन-सी कठिनाई आ रही है?
- आकलन से प्राप्त जानकारी के आधार पर बच्चों की कठिनाइयों को ध्यान में रखते हुए उनके विकास के लिए पहले से अधिक प्रभावी योजना बनाई जाए जैसे, किन बच्चों को एक साथ बैठाकर सिखाया जा सकता है, किस तरह की गतिविधियाँ उनके लिए उपयुक्त होंगी, किस तरह से उन्हें आपस में सीखते हुए प्रोत्साहन दिलाया जा सकता है, आदि;

- इस तरह के आकलन में शिक्षक अपना एवं अपने द्वारा कराई जा रही शिक्षण-प्रक्रिया का भी आकलन करें और अपनी शिक्षण-प्रक्रिया में सुधार करके बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करें। इस तरह प्रत्येक चरण के आकलन के बाद लगातार सुधार हो - सिखाने के तरीकों में और सीखने के अवसरों में;
- आकलन तथा टेस्ट के निष्कर्षों के आधार पर बच्चों के माता-पिता को देने के लिए एक प्रगति पत्रक बनाएँ। इस प्रगति पत्रक में शिक्षक आकलन और सत्रांत परीक्षा के आधार पर बच्चों की प्रगति का विवरण दें;
- आकलन के आधार पर अगली कक्षा के शिक्षक को जानकारी भी दी जाए।

आकलन योजना तैयार करते समय यह ध्यान रखना भी ज़रूरी है कि किन बिंदुओं को आधार मानकर आकलन किया जाए।

आकलन के तरीके

आकलन सीखने-सिखाने और पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा है। सभी बच्चों के सीखने की अपनी एक 'गति' (पेस) होती है और सीखने के तरीके भी भिन्न-भिन्न होते हैं। आकलन के वही तरीके अच्छे हैं जो बच्चों की गति और सीखने के तरीकों को संबोधित कर सकें। शिक्षक द्वारा अपनाए गए आकलन के तरीके सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को उबाऊ, तनावयुक्त तथा भय पैदा करने वाला बना सकते हैं या फिर चुनौतीपूर्ण, मज़ेदार और तनावमुक्त।

यहाँ पर आकलन की कुछ ऐसी युक्तियों की बात की जा रही है जो प्राथमिक स्तर पर हिंदी के संदर्भ में प्रयुक्त की जाती हैं। यह सीखने और सिखाने वाले दोनों के लिए उपयोगी सूचनाएँ प्रदान करने में सहायक होगा और इसकी मदद से पढ़ाने के तरीकों को और भी समृद्ध बनाया जा सकेगा।

भाषा के संदर्भ में आकलन का उद्देश्य है–भाषा की समझ, इसे विभिन्न संदर्भों में उपयोग करने की क्षमता और इसके सौंदर्यपरक पहलू परख सकने की क्षमता का मापन। इससे हमें सीखने वाले की वास्तविक स्थिति का पता चलता है और उसकी स्थिति बेहतर करने के लिए समय पर उचित हस्तक्षेप करने के लिए आवश्यक पहल करने के संकेत भी मिलते हैं। शैक्षणिक प्रक्रियाओं में आकलन का अर्थ है–ज्ञान, समझ, क्षमता और प्रदर्शन को किसी भी तरीके से आँकना। भाषा-शिक्षण के मामले में आकलन को कक्षा-कार्य के ही विस्तार के रूप में देखा जाना ज़रूरी है।

भाषा के संदर्भ में यदि हम आकलन की मौजूदा प्रक्रिया का अवलोकन करें तो मुख्य बात यह समझ में आती है कि मौखिक और लिखित परीक्षा द्वारा बच्चों की शब्द संपदा, व्याकरण तथा पढ़ने और लिखने के ही कौशल की जाँच की जाती है। जाँच के लिए जो परीक्षा-पत्र/प्रश्न-पत्र तैयार किया जाता है वह आमतौर पर पाठ्यपुस्तक पर ही आधारित होता है और उनका उत्तर देना भाषा की समझ पर कम और स्मृति के कौशल पर अधिक आधारित होता है।

शिक्षक की सुविधा कहें या कुछ और, आकलन के लगभग सभी तरीके 'लिखित

जाँच-पत्र' के इर्दगिर्द ही घूमते रहते हैं। मौखिक अभिव्यक्ति, कल्पनाशीलता, अवलोकन– इन सबका कोई स्थान नज़र ही नहीं आता।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भाषा-शिक्षण के जिन उद्देश्यों की बात की गई है, उनके अनुसार आकलन के तरीकों को भी बदलने की महती अनिवार्यता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 ने 'एक समग्र भाषिक निपुणता' की बात पर बल दिया है। इस संदर्भ को मद्देनज़र रखते हुए आकलन के नज़रिए और फिर उसके साथ आकलन की युक्तियों, तकनीकों में भी बदलाव की ज़रूरत है।

आकलन संबंधी युक्तियाँ

हिंदी भाषा के आकलन के संबंध में 'पढ़ाने और सीखने' की प्रक्रिया को एकीकृत रूप में देखना ज़रूरी है। भिन्न-भिन्न युक्तियों का इस्तेमाल करते हुए आकलन की सतत् प्रक्रिया द्वारा भाषा के सभी कौशलों की जाँच करना न केवल आसान हो जाता है अपितु प्रभावशाली भी बन पड़ता है। भाषा सीखने की प्रक्रिया का आकलन करने के लिए यह महत्वपूर्ण हो जाता है कि विद्यार्थी (बच्चे) को भी आकलन की प्रक्रिया में शामिल किया जाए। स्व-आकलन, साथियों द्वारा आकलन, विद्यार्थियों को बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित करता है।

आकलन की भिन्न-भिन्न तकनीकों पर बात कर लेने से पहले यह समझ बना लेना बहुत ज़रूरी है कि-

- **हर बच्चा अपने आप में अद्वितीय है;**
- **सीखने-सिखाने के उसके अपने कुछ खास तरीके होते हैं;**
- **सभी बच्चे अपनी एक निश्चित गति से सीखते हैं;**
- **व्यक्ति विशेष की निश्चित गति (पेस) और सीखने के तरीकों को संबोधित करने वाली आकलन की तकनीकें उनमें आत्मविश्वास पैदा करती हैं;**
- **सीखने के प्रति ललक पैदा करती हैं और बेहतर प्रदर्शन के लिए प्रोत्साहित करती हैं।**

मौखिक परीक्षण

यह एक बहुत ही सरल पर अधिक प्रभावशाली तकनीक है- भाषायी कौशलों के परीक्षण की। मौखिक परीक्षण के लिए औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से बहुत-सी गतिविधियाँ आयोजित की जा सकती हैं। कक्षा-शिक्षण के दौरान बच्चों से तरह-तरह के मुद्दों पर संवाद करना, प्रश्न पूछना, समूह में चर्चा करवाना, अभिनय करवाना आदि बहुत-सी गतिविधियाँ आयोजित कर बच्चों के भाषायी कौशलों की जाँच की जा सकती है। मौखिक परीक्षण के अंतर्गत बहुत-सी गतिविधियाँ औपचारिक रूप से भी आयोजित की जा सकती हैं।

प्रश्न-उत्तर सत्र– बच्चों की भाषा संबंधी तत्परता, शब्द संपदा, उच्चारण और भाषा की बुनावट संबंधी कौशल जानने के लिए तरह-तरह के सवाल बनाए जाते हैं। शुरुआती दौर में सवाल 'एक शब्द में उत्तर' वाले भी हो सकते हैं। यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि प्रश्न पाठ्यपुस्तक के इर्दगिर्द ही न घूमते रहें। बच्चों की रोज़मर्रा की ज़िंदगी से जुड़े सवालों के द्वारा उनसे उत्कृष्ट कोटि के उत्तरों की अपेक्षा की जा सकती है।

बच्चे अपने बारे में, अपने परिवार और प्रिय वस्तुओं के बारे में बोलना बहुत पसंद करते हैं। जो कुछ उन्होंने चारों ओर देखा है, उनके बारे में बोलने के लिए वे सदैव तत्पर रहते हैं। अत: सवाल बनाते समय उनकी रुचियों को अवश्य ध्यान में रखा जाए। 'सवाल बना लेना' ही अपने आप में पर्याप्त नहीं है, पूछने का तरीका, उत्तर पाने के लिए समय देना भी ज़रूरी है और उत्तर सुनते समय शिक्षक के हाव-भाव दोनों के बीच का आपसी रिश्ता बहुत ही महत्वपूर्ण है।

बहुत-से अध्यापक सवाल करते हैं कि भरी कक्षाओं (जहाँ विद्यार्थियों की संख्या अधिक है) में प्रत्येक बच्चे से प्रश्न कैसे पूछ सकते हैं? इस संबंध में उत्तर तो यही है कि बच्चे हमारे पास सिर्फ़ एक ही दिन के लिए तो नहीं हैं न! पाठ पढ़ाने के दौरान भी सवाल पूछे जा सकते हैं, उसके लिए एक निश्चित दिन तय करना ज़रूरी नहीं।

कहानी कहना– पाठशाला आने से पूर्व ही बच्चों का कहानी से रिश्ता सोते-जागते उठते-बैठते किसी न किसी तरह से जुड़ ही जाता है। कहानी सुनना उनकी आदतों में शामिल हो जाता है। कहानियाँ सुनते-सुनते कब वे अपनी ही तरह से कहानियाँ गढ़ने लगते हैं यह एक चमत्कार ही है। सुनी हुई कहानी को अपने शब्दों में सुना देना और अपनी तरफ़ से कहानी सुनाना भी भाषायी कौशलों के आकलन की प्रभावशाली विधि है। कहानी सुनाते समय (बच्चे द्वारा) आकलन के मुख्य बिंदु होंगे-

- **सुने गए शब्दों के अतिरिक्त कुछ नए शब्द स्थिति के अनुरूप डाल पाना;**
- **आवश्यकतानुसार हाव-भाव का प्रयोग कर पाना;**
- **घटना क्रम को याद रख पाना।**

बोलकर पढ़ना– भाषा संबंधी आकलन की इस पारंपरिक विधि की उपयोगिता और महत्त्व को किसी भी दृष्टि से नज़रअंदाज़ नहीं किया जा सकता। पढ़ने के कौशल की जाँच के साथ-साथ उनके उच्चारण, भाव के अनुसार बल, अनुतान देने के कौशल की भी जाँच होती चलती है। विद्यार्थी को तरह-तरह के कथन, संवाद के छोटे-बड़े टुकड़े, नाटक का कोई हिस्सा या फिर पाठ्यपुस्तक के पाठों के अंश बोल-बोल कर पढ़ने के लिए दिए जा सकते हैं।

विद्यार्थी द्वारा गलत उच्चारण करने पर, विस्मय, प्रश्नबोधक हाव-भाव का प्रयोग न करने पर तुरंत टोकना उनमें भय और अरुचि के भाव उत्पन्न करेगा, अत: यह हम पर निर्भर करता है कि सकारात्मक प्रभाव लाने के लिए किस समय उन्हें सही उच्चारण बताया जाए और किस तरीके से बताया जाए।

वर्णन करना– देखी-सुनी या पढ़ी बात का वर्णन करना सुनने में बहुत आसान लगता है पर यह अपने आप में बहुत जटिल कौशल है। बच्चों में यह कौशल स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहता है पर भाषायी शिक्षण की प्रवृत्तियाँ इसे पुष्ट करने के स्थान पर कुचल देती हैं। 'वर्णन करना' आकलन की दृष्टि से भी बहुत महत्वपूर्ण है। प्राथमिक स्तर के शुरुआती दौर में विद्यार्थी को किसी भी परिचित परिवेश में जानी-पहचानी वस्तु दिखाकर, चित्र दिखाकर

या फिर कोई क्रिया दिखाकर बच्चों को वर्णन करने के लिए कहा जा सकता है। वर्णन की शुरुआत एक वाक्य से हो सकती है।

मौखिक परीक्षण में अंक या ग्रेड देने के लिए तीन या पाँच बिंदुओं वाला रेटिंग स्केल प्रयोग में लाया जा सकता है।-

सारणी

नीचे दी गई सारणी में 5 उत्कृष्ट प्रदर्शन की ओर संकेत करता है। 3 से औसत प्रदर्शन का पता चलता है और 1 इस बात की ओर इशारा करता है कि विद्यार्थी को अभी और अवसर देने की ज़रूरत है।

अवलोकन

कक्षा में भाषा शिक्षण के लिए आप बहुत-से तरीकों का प्रयोग करते हैं, जैसे - चर्चा करना, अभिनय, स्वतंत्र अभिव्यक्ति, समूह में संवाद, चित्र पढ़ना आदि। बच्चे जब इन प्रक्रियाओं में संलग्न होते हैं तब शिक्षक द्वारा इन सभी प्रक्रियाओं का अनौपचारिक अवलोकन आकलन का एक महत्वपूर्ण अंग बन जाता है।

अवलोकन आकलन का हिस्सा तभी है जब वह-

- **नियमित रूप से किया जा रहा हो;**
- **किसी भी तरह के पूर्वाग्रह से दूर हो;**
- **आवश्यकतानुसार और सुविधानुसार उसका रिकॉर्ड भी रखा जा रहा हो।**

यहाँ अवलोकन के लिए 'अनौपचारिक' शब्द इस्तेमाल किया गया है, इसका तात्पर्य यह नहीं कि बिना किसी उद्देश्य के अवलोकन कर रहे हैं। किसी गतिविधि का अवलोकन भाषा का प्रवाह, किसी की स्वतंत्र अभिव्यक्ति आदि जानने के लिए किया जा सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषायी कौशलों की जाँच अवलोकन के आधार पर भी की जाती है।

लिखित परीक्षण

'पढ़ना' और 'लिखना' तथा अन्य कौशलों, यथा- वर्गीकरण, वर्णन आदि की जाँच करने के लिए आमतौर पर सभी शिक्षक लिखित परीक्षण पर निर्भरता प्रदर्शित करते हैं। कक्षा कार्य, गृह कार्य, यूनिट परीक्षाएँ लगभग सभी स्थितियों में लिखित परीक्षाओं का ही सहारा लिया जाता है। लिखित परीक्षाएँ सिर्फ़ लिखने के कौशल का ही आकलन नहीं करतीं अपितु पढ़ना, समझना, ग्रहण करना, कल्पना करना,

विवरण	1	2	3	4	5
प्रवाह				अ	
शब्द संपदा			अ		
संरचना			अ		
अभिव्यक्ति				अ	
				कुल अंक – 20	

स्वतंत्र अभिव्यक्ति– इन सभी पक्षों का आकलन करने में मदद करती हैं, बशर्ते इन परीक्षाओं के लिए जिस उपकरण, नि:संदेह रूप से प्रश्न-पत्र की ही बात सबसे पहले आती है, को सर्जनात्मक रूप में प्रस्तुत किया गया हो। आमतौर पर प्रश्न-पत्र लिखने के कौशल की कम, 'स्मृति' के कौशल की जाँच अधिक करते हैं, अत: प्रश्न बनाते समय ध्यान रखा जाए कि प्रश्न-

- **संदर्भ का विस्तार करने वाले हों;**
- **कल्पनाशीलता का पोषण करने वाले हों;**
- **समालोचनात्मक चिंतन को बल देने वाले हों;**
- **अनुभव आधारित उत्तरों का पोषण करने वाले हों;**
- **विश्लेषण क्षमता को बढ़ावा देने वाले हों।**

प्रश्नों के उत्तर के संबंध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात पर गौर करना बेहद ज़रूरी है- विद्यार्थी के शब्दों को महत्त्व देना। यह बात एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट की जा सकती है। एक अध्यापक विद्यार्थी के लिखित उत्तर का आकलन करते हुए कह रहे हैं-"बात तो बच्चे ने बिल्कुल सही लिखी है, पर मैंने जिन शब्दों में बताई थी, वे शब्द नहीं हैं, क्या करूँ, नंबर काट लूँ क्या?"

आप इन शिक्षक महोदय की मदद किस तरह से करेंगे?

श्रुतलेख–श्रुतलेख को भी भाषायी क्षमता की जाँच के उपकरण के रूप में इस्तेमाल में लाया जा सकता है। पर यह पारंपरिक श्रुतलेख से भिन्न है। यह बच्चे की स्मृति और मात्राओं की जाँच नहीं है बल्कि समग्र भाषिक निपुणता/दक्षता की जाँच में सहायक है।

विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक स्तर को, उम्र को ध्यान में रखते हुए किसी भी पाठ्यसामग्री का कोई भी अंश चुनिए। (श्रुतलेख तीसरी कक्षा से शुरू किया जा सकता है।)

पोर्टफ़ोलियो

पोर्टफ़ोलियो का ज़िक्र आते ही हमारे साथी अध्यापक कला, चित्रकारी आदि के आकलन की बात सोचने लगते हैं। पोर्टफ़ोलियो भाषायी कौशलों के आकलन का भी महत्वपूर्ण और कारगर तरीका है। सत्र के पहले दिन से लेकर आखिरी दिन तक बच्चे तरह-तरह की गतिविधियों के द्वारा बहुत कुछ लिख रहे हैं, बना रहे हैं। यह सब उनके पोर्टफ़ोलियो/फोल्डर में रखा जा सकता है। यदि आधुनिकतम तकनीकों की सुविधा हो तो सीडी, कैसेट द्वारा उनके मौखिक कार्यों को भी पोर्टफ़ोलियो में रखा जाना संभव हो सकता है। पोर्टफ़ोलियो रखने का सबसे बड़ा लाभ यह है कि विद्यार्थी जब-तब अपने काम को उलट-पुलट कर देख सकते हैं, अभिभावकों को भी अपने बच्चे के काम की जानकारी मिलती रहती है, शिक्षक भी उसे सिर्फ़ जाँच नहीं अपितु सिखाने की प्रक्रिया का महत्वपूर्ण उपकरण बना सकते हैं। अब सवाल उठता है कि पोर्टफ़ोलियो में क्या-क्या हो। आगे कुछ बातें प्रस्तावित की जा रही हैं-

कक्षा 1 और 2

- **तस्वीरें, चित्रकारी, हस्तलेख के नमूने, लेखन के शुरुआती दौर के वाक्य;**
- **मौखिक अभिव्यक्ति - वर्णन, कहानी,**

संवाद, कविता, चुटकुले, पहेलियों आदि की कैसेट (जो बच्चों ने सुनाई हों) सुविधानुसार;

- श्रुतलेख, अनुकरण लेखन;
- शुरुआती दौर का पठन, चित्र आदि को पढ़ना;
- किसी चित्र को देखकर वर्णन करना, लिखित और मौखिक दोनों रूपों में, घटना/कहानी पर चित्र बनाना।

कक्षा 3 से 5 उपर्युक्त के साथ-साथ-

- अपनी समझ से लिखी गई कहानी, घटना वृत्तांत;
- तैयार किए गए विज्ञापन, नोटिस;
- अनुच्छेद लेखन;
- निबंध लेखन;
- पत्र,
- क्लोज़ टेस्ट के उत्तर;
- स्वरचित कविताएँ;
- लिखी हुई घटनाओं, कहानियों पर चित्र;
- नाटक-प्रस्तुति आदि।

हमने आकलन के बहुत से तरीके सुझाए हैं। शिक्षक अपनी सुविधा, व कल्पनाशीलता के सहारे इस सूची में संवर्धन, संशोधन कर आकलन के अपने तरीके ईजाद कर सकते हैं।

***

खेल के प्रति बच्चों का सहज आकर्षण होता है। खेल जादू का हो, तो फिर कहना ही क्या! जादू के खेल बच्चों की कुछ सीखने में भी मदद कर सकते हैं। यह जानना शिक्षकों के लिए उपयोगी भी होगा और रुचिकर भी। तो आइए जानते हैं कि खेल, जादू और गणित तीनों मिलकर क्या कमाल कर सकते हैं!

जादू के अंक या अंकों का जादू?

रजनी जोशी*

0 से लेकर 9 तक के अंकों में कमाल का जादू है। आओ बच्चों! जादू के कुछ खेल खेलें। सबसे पहले अपने मन में कोई भी संख्या सोच लो। मुझे मत बताना। सोच ली? जितनी संख्या अपने लिए सोची है उतनी ही अपने दोस्त के लिए सोचो और अपनी और दोस्त की संख्या जोड़ दो। इसमें 10 मेरे जोड़ दो। अब कुल जितनी संख्या हुई उसके आधे किसी को दे दो। दोस्त के दोस्त को लौटा दो। अब मैं बताऊँ तुम्हारे पास कितने बचे? सोच रहे हो न कि कोई नहीं बता सकता। पर, बच्चों! इसका उत्तर मैं तुम्हारे बताए बिना ही बता सकती हूँ। तुम्हारे पास बचे पाँच। हैरान हो गए न कि कैसे पता चला? आओ! इस जादू का भेद पता करें-

माना कि तुमने संख्या सोची	20
दोस्त के लिए भी इतने ही सोचे	+20
मेरे जोड़े	+10
तुम्हारे पास कुल हुए	+50
अब आधे किसी को दे दिए	50/2=25
दोस्त के दोस्त को लौटाए	25-20 = 5
अब तुम्हारे पास बचे	5

यह हम ऐसे बताते हैं कि तुम चाहे कितनी भी संख्या सोचो उसमें मेरे बताए हुए जितने भी जोड़ोगे हमेशा उसके आधे तुम्हारे पास बचेंगे। अब अपने दोस्तों को भी यह जादू दिखाओ और खेल-खेल में मनोरंजन के साथ-साथ जमा, घटा और भाग तीनों में पारंगत हो जाओ।

एक दूसरा रोचक जादू और देखो। इसे हम स्लेट या कागज़ पर लिखकर देखेंगे। सबसे पहले तीन अंकों की कोई भी संख्या लिखो। इसका क्रम उल्टा करके बड़ी संख्या में से छोटी संख्या घटाओ। घटाने पर जो संख्या आए उसका क्रम उल्टा करके जोड़ो। उत्तर हमेशा 1089 आएगा। आओ! देखते हैं कि कैसे?...

हमने तीन अंकों की संख्या लिखी	123
क्रम उल्टा करने पर	321
बड़ी संख्या में से छोटी घटाने पर	321

* प्रोफ़ेसर एवं प्रिंसिपल, वेंकटेश्वर (पी.जी.) कॉलेज ऑफ एजूकेशन, वी.पी.ओ.-राजपुर, सोनीपत

$- 123$

$= 198$

अब इसका पुनः क्रम उल्टा कर जोड़ने पर 891

$+ 198$

$= 1089$

है न मज़ेदार जादू। बच्चो! तीन अंकों की चाहे कोई भी संख्या लिखकर इसी तरह क्रम उल्टा करके घटाने और जोड़ने पर उत्तर हमेशा 1089 आएगा।

अब अंकों के जादू की एक दिमागी कसरत करके देखते हैं-

एक चौकोर खाने में तीन रेखाएँ आड़ी व तिरछी इस प्रकार खींचो कि कुल 9 खाने कुछ इस प्रकार बन जाएँ-

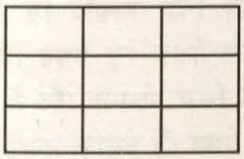

इन खानों या वर्गों में 1 से 9 तक अंक इस तरह लिखो कि ऊपर से नीचे की ओर बाएँ से दाएँ की ओर, कहीं से भी जोड़ें उनका जोड़ 15 आए। घबरा गए न? घबराने की बात नहीं है। बड़ा ही आसान तरीका है। सबसे पहले 5 अंक इस प्रकार लिखो-

2		6
	5	
4		8

शेष अंक बचे- 1, 3, 7, 9

अब सबसे ऊपर 2 □ 6 के वर्ग में इन चारों में से वह अंक लिखो कि तीनों अंकों का जोड़ 15 आए। जैसे -

$2+6+7 = 15$

अतः 2 □ 6 के बीच के वर्ग में हम 7 लिखेंगे। शेष अंक बचे - 1, 3, 9

अब सबसे नीचे 4 □ 8 के बीच के वर्ग में वह अंक लिखो कि तीनों अंकों का जोड़ 15 आए। जैसे -

$4+8+3 = 15$

अतः 4 □ 8 के बीच के वर्ग में हम 3 लिखेंगे। शेष अंक बचे - 1, 9

अब बीच में अंक है- 5 और हमें 2 □ 4 तथा 6 □ 8 के वर्ग में 1 और 9 को इस प्रकार लिखना है कि 2 □ 4 का जोड़ 15 आए और 6 □ 8 का जोड़ भी 15 ही आए।

जैसे - $2+4+9 = 15$

$6+8+1 = 15$

अतः 2 □ 4 के बीच के वर्ग में हम 9 लिखेंगे और 6 □ 8 के बीच के वर्ग में 1 कुछ इस प्रकार लिखेंगे-

2	7	6
9	5	1
4	3	8

चलते-चलते 9 का पहाड़ा और पहाड़े में अंकों का जादू और देखेंगे। सबसे पहले 9 से शुरू करके 1 से 9 तक गिनती इस प्रकार लिखो-

9

1

2
3
4
5
6
7
8
9

अब 1 के दाहिनी ओर 8 से शुरू करके 0 तक नीचे की ओर इस प्रकार लिखो-

9
1 8
2 7
3 6
4 5
5 4
6 3
7 2
8 1
9 0

देखा बन गया 9 का पहाड़ा? अब तुम मान गए होंगे कि 0 से 9 तक अंकों में बहुत से जादू समाए हुए हैं। ऐसे ही कुछ जादू स्वयं बनाने की कोशिश करो। जमा, घटा, गुणा, भाग सीखने के साथ-साथ अपना और अपने दोस्तों और साथियों का मनोरंजन करो।

***

स्कूली गणित का दर्शन

- बच्चे गणित से भयभीत होने की बजाय उसका आनंद उठाएँ।
- बच्चे गणित को ऐसा विषय मानें, जिस पर वे बात कर सकते हैं, जिससे संप्रेषण हो सकता है, आपस में जिस पर चर्चा कर सकते हैं और जिस पर साथ-साथ काम कर सकते हैं।
- बच्चे सार्थक समस्याएँ उठाएँ और उन्हें हल करें।
- अध्यापक कक्षा में प्रत्येक बच्चे के साथ इस विश्वास के आधार पर काम करे कि प्रत्येक बच्चा गणित सीख सकता है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पृष्ठ सं. 49

शिक्षक की पक्षपातपूर्ण धारणाओं और मान्यताओं का बच्चों पर बेहद असर पड़ता है। शिक्षक का सकारात्मक रवैया बच्चे को उत्साही बनाकर उसे और अधिक अच्छा करने की प्रेरणा देता है तो शिक्षक का नकारात्मक रवैया बच्चे को हतोत्साहित कर असफलता की ओर ले जाता है। कैसे? पढ़िए, इस शोध आधारित लेख में।

चूहों की कथा, बच्चों की व्यथा*

अरविंद गुप्ता

टीचर का बच्चों के प्रति रवैया, उनके प्रति विश्वास बहुत मायने रखता है। आमतौर पर शिक्षक कुछ चुनिंदा बच्चों से ही प्रश्नों के उत्तर पूछते हैं। अक्सर प्रश्न होशियार से ही पूछे जाते हैं। इससे इन बच्चों का हौसला और बुलंद होता है और कमज़ोर बच्चे अपनी अज्ञानता को और अधिक कोसते हैं। इसमें सबसे अधिक नुक्सान गरीब, दलित बच्चों को होता है, जिनके घरों में पढ़ाई-लिखाई की कोई परंपरा नहीं होती। शिक्षक पढ़े-लिखे उच्च जाति के बच्चों से ही अधिक प्रश्न पूछते हैं। इससे निश्चित रूप से उन्हें ज़्यादा बढ़ावा मिलता है और उनका मनोबल ऊँचा होता है। परंतु साथ-साथ गरीब, निचली जाति के बच्चे और हाशिए पर आ खड़े होते हैं। विज्ञान के अनुसार मानव जाति के 99 प्रतिशत से अधिक जींस लगभग एक जैसे होते हैं। जीनोम प्रोजेक्ट का यही संदेश है। 1970 के दशक में एक अनूठी पुस्तक छपी 'पिगमेलियन इन द क्लासरूम'। नीचे की सच्ची कहानी इसी पुस्तक पर आधारित है। प्रयोग से साफ़ स्पष्ट है कि शिक्षक की मान्यताओं का बच्चों पर बेहद असर पड़ता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अच्छे और बुरे छात्र शिक्षक ही बनाता है।

अमरीका में मनोविज्ञान के प्रोफ़ेसर रॉबर्ट रोज़नथाल ने एक बार अपने छात्रों के दो समूहों को बुलाया। उन्होंने प्रत्येक समूह को तीस-तीस चूहे दिए और साथ में भूलभुलैया वाली एक पहेली भी दी। उन्होंने छात्रों से कहा कि वे कुछ हफ़्तों में चूहों को भूलभुलैया में से बाहर निकलना सिखाएँ। जाते समय उन्होंने दोनों समूहों से अलग-अलग बातें कहीं। पहले समूह से उन्होंने कहा कि उन्होंने खूब छानबीन करके सबसे होशियार चूहे उन्हें दिए हैं, ऐसे चूहे जिनका दिशाज्ञान अच्छी तरह विकसित है। दूसरे समूह से उन्होंने चुपचाप कहा कि आनुवंशिक कारणों से उन्हें दिए गए चूहों से सफलता की ज़्यादा उम्मीद नहीं करनी चाहिए।

---

* लेख सामयिक वार्ता, मार्च 2009 से साभार

असल में यह अंतर केवल छात्रों के दिमाग में था, क्योंकि चूहे रेंडम सलेक्शन द्वारा चुने गए थे और हर लिहाज़ से लगभग एक-जैसे थे। और इसी बात की टेस्टिंग रोज़नथाल कर रहे थे– पूर्वाग्रहों का प्रभाव। ट्रेनिंग की अवधि समाप्त होने पर प्रोफ़ेसर ने पाया कि 'अच्छे' करार चूहों ने वास्तव में बहुत अच्छा किया, किंतु 'खराब' करार चूहे तो अपनी जगह से हिले तक नहीं।

इन नतीजों से प्रेरित होकर रोज़नथाल ने इसी प्रयोग को एक स्कूल में करने की ठानी। मई 1964 में रोज़नथाल अपनी टीम के साथ दक्षिण सैन-फ्रांसिसको के एक प्राथमिक स्कूल में गए। स्कूल गरीब इलाके में स्थित था और वहाँ मज़दूरी भी कम थी। यहाँ पर मैक्सिको, प्यूर्टोरिको आदि देशों से आए गरीब लोग सरकारी अनुदान पर अपनी आजीविका चलाते थे। स्कूल में आने वाले अधिकांश बच्चे गरीब थे।

शोध टीम ने स्कूल के टीचरों से साफ़-साफ़ झूठ बोला। उन्होंने कहा कि वे हावर्ड विश्वविद्यालय से आए हैं और यह शोध वे नेशनल साइंस फाउंडेशन के लिए कर रहे हैं। इतने बड़े-बड़े नाम सुनकर शिक्षकों ने तुरंत स्कूल के दरवाज़े उनके लिए खोल दिए। उन बच्चों का पता लगाने के लिए, जिनमें आगे बढ़ने की क्षमता थी, छात्रों को एक नए ढंग का टेस्ट दिया गया।

वास्तव में यह सब झूठ था। बच्चों की मानसिक क्षमता नापने के लिए उनको एक साधारण आई क्यू (बुद्धिमता सूचकांक) टेस्ट दिया गया। फिर हरेक कक्षा में 20 प्रतिशत बच्चों को बिना किसी मापदंड के, लॉटरी के आधार पर 'बहुत तेज़' करार दिया गया। इसी प्रकार लॉटरी के आधार पर 20 प्रतिशत बच्चों को 'कमज़ोर' करार दिया गया। शिक्षकों में इस प्रकार का मानस बना देने के बाद शोध टीम ने अपना काम जारी रखा।

चार महीने के बाद एक और टेस्ट दिया गया। तीसरा टेस्ट सालभर बाद और अंतिम टेस्ट दो साल के बाद दिया गया। इन टेस्टों के नतीजों को देखकर रोज़नथाल और उनकी टीम एकदम आश्चर्यचकित रह गई। जो बच्चे कृत्रिम रूप से अच्छा करने योग्य समझे गए थे, उन्होंने अन्य बच्चों की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी से प्रगति की थी। दर्ज़नों में से आप केवल दो ही उदाहरणों पर नज़र डालें तो तस्वीर स्पष्ट हो जाएगी। जोज़ नाम के मैक्सिकन बालक को 'प्रतिभाशाली' करार दिए जाने से पहले उसकी आई क्यू केवल 61 थी। एक साल बाद उसकी आई क्यू 106 हो गई थी। सालभर पहले जो बच्चा पिछड़ा हुआ था, वह एक कृत्रिम नया लेबल लग जाने मात्र से वाकई में मेधावी और गुणी बन गया था। मारिया नाम की एक मैक्सिकन लड़की में भी इसी तरह का अभूतपूर्व परिवर्तन आया। उसकी आई क्यू 88 से बढ़कर 128 हो गई। इन रोचक मिसालों के बारे में शिक्षकों का कहना था कि इन बच्चों में 'उत्सुकता', 'मौलिकता' और 'परिस्थितियों के अनुसार खुद को ढालने' की क्षमता थी।

जो बच्चे तेज़ी से आगे बढ़े, उन सबकी प्रगति एक जैसी नहीं थी। सबसे ऊँची प्रगति

पर छलाँग, सबसे छोटे बच्चों ने लगाई। इसका कारण शायद यह था, कि छोटे बच्चे अपने शिक्षकों से सबसे अधिक प्रभावित थे।

इससे यह स्पष्ट हुआ कि शिक्षक की पक्षपातपूर्ण धारणाओं और मान्यताओं का बच्चों पर बेहद असर पड़ता है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि अच्छे और बुरे छात्र, शिक्षक ही बनाता है। टीम ने पाया कि 'अच्छे करार' बच्चों की तरफ़ टीचर का रवैया बदला- टीचर ने उनसे ज़्यादा बातचीत की, उन्हें प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रेरित किया और शायद यही उन बच्चों की प्रगति का राज था। परंतु अंत में टीम को इस मान्यता को नकारना पड़ा। बाकी टेस्टों से पता चला कि इन बच्चों ने न केवल भाषा परंतु तार्किक बुद्धि में भी प्रवीणता हासिल की थी। एक कृत्रिम लेबल ने 'पिछड़े' बच्चों को 'होशियार' बना दिया था।

इसका सार यही है कि अगर शिक्षक का छात्र की सफलता में पक्का विश्वास होगा, तो बच्चा अवश्य सफल होगा। शिक्षा में शायद यह सबसे सस्ता सुधार होगा, परंतु इसे लागू करना उतना ही मुश्किल काम होगा।

***

शिक्षकों के लिए आवश्यक तैयारी

(क) शिक्षकों की ऐसी तैयारी ज़रूरी है कि वे बच्चों का ख्याल रख सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।

(ख) सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सकें।

(ग) ग्रहणशील और निरंतर सीखने वाले हों।

(घ) शिक्षा को अपने व्यक्तिगत अनुभवों की सार्थकता की खोज के रूप में देखें तथा ज्ञान निर्माण को मननशील अधिगम की लगातार उभरती प्रक्रिया के रूप में स्वीकार करें।

(ड) ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखें।

(च) समाज के प्रति अपना दायित्व समझें और बेहतर विश्व के लिए काम करें।

(छ) उत्पादक कार्य के महत्त्व को समझें तथा कक्षा के बाहर और अंदर व्यवहारिक अनुभव देने के लिए कार्य को शिक्षण का माध्यम बनाएँ।

(ज) पाठ्यचर्या की रूपरेखा, उसके नीतिगत निहितार्थ एवं पाठों का विश्लेषण करें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 पृष्ठ सं. 122

बालिका शिक्षा के संदर्भ में 'शिक्षा' जैसे मानवाधिकार का व्यावहारिक क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस समस्या से निपटने के लिए सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना की शुरुआत की है। पर मदद ज़रूरतमंद बालिकाओं तक पहुँच सके इसके लिए उन चुनौतियों पर भी नज़र डाल लेना ज़रूरी है जिनका सामना करके ही इस योजना की सार्थकता सिद्ध हो सकेगी।

उत्तर प्रदेश में सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना – एक सार्थक योजना में निहित चुनौतियाँ

रश्मि श्रीवास्तव*

शिक्षा हर व्यक्ति का मानवाधिकार है उसे यह हर हाल में उपलब्ध होनी चाहिए। आधुनिक भारतीय समाज इस बात को सैद्धांतिक रूप में तो पूरी तरह स्वीकार करता है किंतु जब बात इसके व्यावहारिक क्रियान्वयन की हो तो स्थिति ठीक-ठाक नहीं है। भारत में शिक्षा संबंधित आंकड़े इस बात की ओर संकेत करते हैं कि निर्धनता तथा बालिका वर्ग का होना एक ऐसा अभिशाप है जो इस देश की बालिकाओं को उनके इस मानवाधिकार से दूर कर देता है। 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में महिलाओं की साक्षरता दर मात्र 53.67 है। अर्थात् आज भी बड़ी संख्या में बालिकाएँ विद्यालयी शिक्षा से वंचित हैं। जो बच्चियाँ विद्यालयों तक पहुँच जाती हैं उनकी एक बड़ी समस्या अपनी शिक्षा को आगे जारी रख पाने की है। यूनिसेफ की ताजा रिपोर्ट में बालक-बालिका शिक्षा असमानता की दृष्टि से जिन 25 राष्ट्रों को समस्याग्रस्त माना है उनमें भारत भी एक है जो कि चिंता का विषय है।

यह ठीक है कि आधुनिक भारतीय समाज में बड़ी संख्या में महिलाएँ ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में पुरुषों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही हैं, अपनी योग्यता का परिचय दे रही हैं, किंतु हम इस एक बड़े सच को भी अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि बड़ी संख्या में बालिकाएँ या तो विद्यालयों तक पहुँच ही नहीं पाती हैं या फिर आधी-अधूरी शिक्षा प्राप्त कर बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने को विवश हो जाती हैं। बालिकाओं को इस स्थिति से उबारने तथा माध्यमिक स्तर तक प्राप्त शिक्षा को और आगे बढ़ाने, उन्हें स्वावलंबी बनाने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश सरकार ने 5 फरवरी 2009 को सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना लागू की है। जिसके संबंध में सचिव शिक्षा अनुभाग 10 उ.प्र. शासन द्वारा

* विभागाध्यक्ष (बी.एड.), हीरालाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, सरोजनी नगर, लखनऊ

अपने पत्रांक 101 दिनांक 20 जनवरी 2009 द्वारा विस्तृत शासनादेश भी जारी कर दिया गया है। यह योजना गरीबी रेखा से नीचे (बी.पी.एल.) जीवन यापन करने वाले परिवारों की बालिकाओं की शिक्षा में प्रोत्साहन दिये जाने के उद्देश्य से वर्ष 2008-09 से लागू हुई है। इस योजना के तहत गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले बी.पी.एल. श्रेणी की छात्राओं को कक्षा 11 में 15 हज़ार रु. एवं विद्यालय आने जाने हेतु एक साइकिल व कक्षा 12 में रु. 10 हज़ार की धनराशि प्रदान की जाएगी। योजना का लाभ प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि छात्रा ने वर्ष 2008 की हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरांत कक्षा 11 में प्रवेश लिया हो। छात्रा के अभिभावक बी.पी.एल. श्रेणी के कार्ड धारक हों, तथा छात्रा अविवाहित हो। आवेदन पत्र संबंधित प्रधानाचार्य/प्रधानाचार्या द्वारा संस्तुत एवं अग्रसारित हो।

प्रदेश की मुख्यमंत्री ने 5 फरवरी को लखनऊ नगर की 10 छात्राओं को 15-15 हज़ार रु. के चेक, साइकिल व बचत प्रमाण पत्र वितरित कर इस योजना का शुभारंभ किया तथा इस बात की घोषणा की कि आने वाले सालों में यह योजना सतत् चलती रहेगी।

नि:संदेह ऊपरी तौर पर यह योजना आकर्षक तथा निर्धन वर्ग की किशोरियों के लिए बड़ी ही लाभकारी है। दूरदराज़ स्थित ग्रामीण इलाक़ों में तथा अतिनिर्धन परिवारों में प्राय: हाईस्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के उपरांत बालिकाओं की शिक्षा को पूर्ण मान लिया जाता है। इन बालिकाओं के अभिभावक या तो उन्हें पढ़ाई छोड़ कर विवाह के बंधन में बांध देते हैं या छोटे-मोटे रोज़गार में लग जाने पर विवश करते हैं। इस योजना के आकर्षण से जहाँ कुछ छात्राएँ अपनी आगे की पढ़ाई जारी रख सकेंगी वहीं हाईस्कूल से नीचे अध्ययन कर रही छात्राओं में इस योजना का लाभ प्राप्त करने का आकर्षण, परीक्षा उत्तीर्ण करने की प्रेरणा का काम करेगा। इतना सब होते हुए भी योजना के सही रूप में क्रियान्वयन व उसका सही लाभ प्राप्त करने में अनेक चुनौतियाँ हैं जिन पर अवश्य ही नज़र रखनी होगी।

1. इस बात की अनदेखी नहीं की जा सकती है कि इस योजना का सही लाभ बालिका वर्ग को तभी मिल सकता है जब योजना की राशि जरूरतमंद बालिकाओं तक पहुँच सके। प्राय: विभिन्न सरकारी योजनाओं की जानकारी उन्हें मिल ही नहीं पाती है जिन्हें उसकी आवश्यकता है। अत: अति आवश्यक है कि इस योजना की पूरी जानकारी विद्यालयों की बालिकाओं को प्रदान की जाए।
2. गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे परिवार में अभिभावक प्राय: कम पढ़े-लिखे होते हैं। अत: समाचार पत्र-पत्रिकाओं के संदेश उन तक नहीं पहुँच पाते। आवश्यक है कि इस योजना की जानकारी का प्रसार संचार के अन्य साधनों, रेडियो व दूरदर्शन के माध्यम से किया जाए। विद्यालय इस योजना की जानकारी छात्राओं के माध्यम से सीधे तौर पर भी अभिभावकों तक पहुँचा सकते हैं।

3. इस योजना की एक अन्य चुनौती योजना के विस्तार की है। इस योजना का लाभ सिर्फ बी.पी.एल. परिवारों तक सीमित है। सरकार द्वारा क्रियान्वित योजनाओं का यदि हम समाज पर व्यापक प्रभाव देखना चाहते हैं तो योजनाओं का प्रसार भी व्यापक होना चाहिए। केवल बी.पी.एल. परिवारों तक इस योजना का लाभ सीमित करने से उचित लाभ न प्राप्त होगा। भारत की सामाजिक परिस्थितियों में यह एक कड़ुवा सच है कि मध्यम वर्ग की बालिकाएँ शिक्षा के अपने मौलिक अधिकार को प्राप्त करने हेतु संघर्षरत हैं, अपनी शिक्षा जारी रखने के लिए उन्हें भी अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। अत: आवश्यक है कि उ.प्र. सरकार द्वारा जारी की गई इस योजना का विस्तार करते हुए अन्य वर्ग की बालिकाओं को भी इस योजना का लाभ उठाने के अवसर प्रदान किए जाएँ।
4. इस योजना का वास्तविक उद्देश्य निर्धन बालिकाओं की शिक्षा के क्षेत्र में आने वाली रुकावट को दूर करना है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि सरकार द्वारा प्रदत्त 10 व 15 हज़ार रु. की मदद क्या सही रूप में उनकी इस बाधा को दूर कर सकेगी। इस बात की पर्याप्त आशंका है कि निर्धन बालिकाओं को प्राप्त यह राशि उनके परिवार के सदस्यों द्वारा अन्य पारिवारिक खर्चों पर व्यय कर दी जाए और छात्रा की स्थिति वहीं की वहीं रहे। चूँकि यह योजना बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु है अत: क्या ही अच्छा होता कि सरकार धनराशि का व्यय किसी अन्य तकनीकी प्रशिक्षण में प्रवेश राशि में छूट आदि के रूप में करती। इसका सीधा लाभ बालिका को मिलता और उसकी आगे की शिक्षा का मार्ग भी खुल जाता।
5. यहाँ ध्यान इस बात का भी रखना होगा कि प्रदेश सरकार द्वारा लागू यह योजना आगे आने वाले वर्षो में सतत् जारी रह सके। ऐसा देखा गया है कि प्रदेश में सरकार परिवर्तन के साथ ही इस प्रकार की जनकल्याणकारी योजनाएँ प्राय: बंद कर दी जाती हैं। हमें भूलना नहीं चाहिए कि पूर्ववर्ती सरकार के शासन काल में इसी प्रकार की योजना 'कन्या विद्याधन' के नाम से ही शुरू की गई थी। इस योजना की राशि जहाँ 20,000/- थी वहीं वह योजना सिर्फ गरीबी की रेखा के नीचे वर्ग की बालिकाओं के लिए न होकर हर वर्ग के लिए थी। सरकार बदलने के साथ इस योजना को बंद कर दिया गया था। वर्तमान नवीन योजना (सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना) सतत् रूप में आगे भी जारी रह सके इस बात के प्रावधान अवश्य किए जाने चाहिए।
6. बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु चलाए जा रहे कार्यक्रमों में वित्तीय आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ-साथ जागरूकता कार्यक्रमों की अपनी महत्ता है क्योंकि यहाँ प्रमुख समस्या साधन के साथ-साथ सोच की भी है।

भारतीय परिवारों में बालक को शिक्षित किया जाना प्रथम आवश्यकता मानी जाती है जबकि बालिका की शिक्षा दूसरे दर्जे पर है। सरकार को बालिका शिक्षा को उचित दिशा देने के लिए प्रोत्साहन राशि कार्यक्रमों के साथ-साथ जागरूकता कार्यक्रम भी चलाने होंगे। एक बार देश का एक-एक अभिभावक अपनी बालिका की शिक्षा के प्रति सजग हो गया तो संघर्ष केवल साधन का बचेगा। इस दिशा में प्रधान समस्या तो उनकी सोच की है जिसकी अनदेखी से हमें बचना होगा। अर्थात् उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा बालिका शिक्षा के प्रोत्साहन हेतु लागू की गई योजना सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना एक आकर्षक योजना है किंतु भविष्य में इसकी उपयोगिता को बनाए रखने, योजना का लाभ ज़रूरतमंदों तक पहुँचा सकने तथा योजना को सतत् रूप में लागू रखने हेतु अवश्य ही पर्याप्त सावधानी बरतनी होगी।

संदर्भ

1. इंडिया (2007) ए रिफरेंस एनुअल, 2007, मिनिस्ट्री आफ इन्फारमेशन एंड ब्रॉडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, नई दिल्ली है, प्र. 7
2. बैलमी कैरल (2003) दुनिया के बच्चों की स्थिति, बालिका, शिक्षा और विकास, संयुक्त राष्ट्र बालकोष (यूनिसेफ) यू.एस.ए., प्र. 4
3. दैनिक जागरण (2009) मुख्यमंत्री ने बालिकाओं के लाभ की दो योजनाएँ शुरू कीं, जागरण प्रकाशन, लखनऊ, प्र. 1
4. दैनिक जागरण (2009) प्रदेश में सावित्री बाई फुले बालिका शिक्षा मदद योजना लागू, जागरण प्रकाशन, लखनऊ, प्र. 7
5. द टाइम्स ऑफ इंडिया (2009) साइकल एंड कैश फार गर्ल्स, द टाइम्स ऑफ इंडिया पब्लिकेशन, लखनऊ, ट्यूसडे, 2009, प्र. 2

***

आरंभ से ही पुतलियाँ कथाओं, लघुकथाओं में वर्णित पात्रों, प्रसंगों, घटनाक्रमों को सहज संप्रेषणीय और रोचक बनाने का एक सशक्त माध्यम रही हैं। धार्मिक अनुष्ठानों और विभिन्न पारंपरिक रीतिरिवाज़ों में भी पुतलियों का प्रयोग किया जाता रहा है। केवल भारत में ही नहीं विदेशों में भी पुतलीकला प्रयोग का बृहत् इतिहास रहा है।

वस्तुतः एक सुदीर्घ परंपरा रही है, पुतलीकला की! प्रस्तुत आलेख इसी पर प्रकाश डालने का प्रयास है।

पुतलीकला - एक परंपरा

श्रीमती वीना कुमार*
एम. एस. राठौर**

इतिहासकारों के अनुसार पुतलियाँ मानव सभ्यता जितनी ही प्राचीन हैं। 2500 ई. पू. अवधि के दौरान हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ों की प्राचीन सभ्यता हज़ारों किलोमीटर तक फैली हुई थी। वहाँ विभिन्न पुरातात्त्विक महत्त्व के साक्ष्य प्राप्त हुए हैं; जिनमें पकी मिट्टी का बना एक बैल भी है, जिसका सिर अलग से जोड़ा जा सकता है और उसे एक डोरी द्वारा हिलाया-डुलाया भी जा सकता है। इस प्रकार वह एक तरह से सीमित सजीवता प्रदान करता है। एक अन्य मूर्ति मिट्टी के बंदर की भी प्राप्त हुई है, जो एक छड़ी पर ऊपर और नीचे की ओर सरकता है।

तथ्यों द्वारा यह प्रमाणित हो चुका है कि प्रागैतिहासिक मानव को पुतलियों के बारे में जानकारी थी। इनमें बहुत सारी पुतलियाँ डोरियों को खींचकर संचालित होती थीं, जिन्हें उत्तरी एवं दक्षिण अमेरिका में यूरोपियन लोगों के पदार्पण के दौरान पाया गया था। प्रागैतिहासिक काल में 26,000 वर्ष पुरानी हाथी दाँत की उकेरी लघुमूर्ति पाई गई, जिसकी एक भुजा को हिलाया-डुलाया जा सकता है। पुरातत्त्वविदों ने इसे "द मैरियोनेटि" उपनाम दिया है। इस लघुमूर्ति को यूरोप में चेक गणतंत्र के बरनो स्थान में खोजा गया था।

भारत में नाट्यकला के विकास को लगभग 200 ई. पू. से 200 ई. के बीच की अवधि में *भरतमुनि* द्वारा लिखित ***'नाट्यशास्त्र'*** नामक ग्रंथ में लिपिबद्ध देखा जा सकता है। यहाँ *नाट्य* शब्द का तात्पर्य अभिनय या नाटक तथा ***शास्त्र*** शब्द का तात्पर्य आधिकारिक ग्रंथ या पुस्तक से है। इस पुस्तक के अनुसार *नाट्यशास्त्र* की रचना देवताओं के राजा इंद्र के निवेदन पर

* आर्टिस्ट, प्रकाशन विभाग, रा.शै.अनु.प्र.परि., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110016
** एसोसिएट प्रोफ़ेसर, विज़ुअल आर्ट विभाग, मोहन लाल सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर, राजस्थान

स्वयं ब्रह्मा ने की थी, जिसे ब्रह्मा ने पाँचवे वेद की संज्ञा प्रदान की। विश्वकर्मा ने पहली बार नाट्य मंच या नाट्यशाला का निर्माण किया, जहाँ अभिनयकर्त्ताओं को राक्षसों से बचाकर सुरक्षित रखा जा सकता था, क्योंकि वे नाटक में अपनी पराजय के प्रदर्शन पर उसमें व्यवधान डालते या विरोध करते थे।

प्राचीन भारत तथा अन्य बहुत सारे देशों में पुतली को एक दैवीय रचना के रूप में देखा गया। ग्यारहवीं शताब्दी के भारतीय लेखक सोमदेव ने एक बढ़ई द्वारा रचित उत्कृष्ट गुड़ियाओं के बारे में वर्णन किया है। शिव की पत्नी इन्हें बहुत प्यार करती थीं। अत: शिव ने नृत्य करने के लिए उन्हें जीवन दिया। बढ़ई ने इस वरदान को निरंतर बने रहने का आशीर्वाद माँगा जो कि उसे प्रदान किया गया।

महान सम्राट अशोक के शिलालेखों में अनेक धर्मों तथा पूजा की पद्धतियों का वर्णन किया गया है, जिन्हें ई.पू. की लगभग तीसरी शताब्दी में संपादित किया गया था और इसमें जंबूद्वीप (भारत का प्राचीन नाम) को एक पुतली नाट्यशाला के रूप में संकेतित किया गया है। इसके बाद की शती में महान व्याकरण शास्त्री *पतंजलि* ने अपनी पुस्तक '***अष्टाध्यायी महाभाष्य***' में संस्कृत नाटकों के चित्रों तथा उस समय के मनोरंजनों के बारे में विश्लेषण किया है। आपने इन्हें तीन प्रमुख मानदंडों में वर्गीकृत किया है–नृत्यनाटिका, पुतली और संगीतमय वर्णनात्मक कथावाचन। पतंजलि से बहुत पहले एक अन्य महान वैयाकरणविद् पाणिनि ने पुतली को चित्र के रूप में मानते हुए व्याकरण के नियम लिखे थे। बौद्ध महाग्रंथ '**थेरीगाथा**' में स्पष्ट रूप से पुतली नाट्य के बारे में संदर्भ दिए गए हैं। वे डोर-पुतली के नृत्य नाट्य के संदर्भ दिए गए हैं, जिसमें लकड़ी के जुड़ने वाले अंगों का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

बिल बेर्ड ने अपनी पुस्तक 'द आर्ट ऑफ पपेट' में अमरिकी मुखौटों के बारे में बताया है, जिनके जबड़े डोरी के खींचने से बंद होते एवं खुलते थे। सच यह है कि पुराकाल से दुनियाभर में पुतलियों तथा मुखौटों को लगभग सभी लोग उत्सवों एवं त्योहारों में इस्तेमाल करते रहे हैं, जो इस बात का संकेत है कि

प्रागैतिहासिक मानव ने अपने प्राचीनकाल के वैश्विक प्रवास के दौरान इस कला को अपने साथ बनाए रखा।

भारत में पुतलियाँ गहनता के साथ भारतीय धार्मिक प्रकृति में समाई हुई हैं। अधिकतर 'परंपरागत पुतली प्रदर्शन', धार्मिक मेलों एवं त्योहारों से अंत:संबंधित है जो आशीर्वाद पाने हेतु ईश्वर, देवता एवं देवियों की कथाओं का वर्णन करती हैं। पहली सहस्राब्दी की समाप्ति के दौरान 'श्री विजय राजवंश', दक्षिण एशियाई देशों जैसे इंडोनेशिया, थाइलैंड, कंबोडिया, मलेशिया तथा श्रीलंका तक फैला हुआ था। तब धार्मिक संदेश, महागाथाओं एवं पौराणिक गाथाओं का प्रसार दूर-दूर तक किया जा रहा था। साथ ही पुतलीकला को आधार बनाकर अन्य सभी कलाओं को भी प्रसारित किया जा रहा था।

जेम्स हेस्टिंग्स द्वारा संपादित धर्म तथा नीति विश्वकोष (1908-1926) के भाग-4, पृ. 792-796 में 'डिवाइनेशन' के अंतर्गत हमें प्राचीन मिस्रवासियों द्वारा सचल मूर्तियों के प्रयोग के बारे में जानकारी प्राप्त होती है।

निश्चित रूप से बाद में 'पुतली', बच्चों के खेलने की सामग्री के रूप में विकसित हुई। इस बात के साक्ष्य प्राचीन मिस्र, भारत और इसके बाद यूनान में मिलते हैं। मानव नाट्य मंचों के साथ-साथ पुतली मंच विकसित हुए, जो प्राचीन यूनान से सुदूर पूर्वी देशों में पहुँचे। हालाँकि भारत सहित सुदूर पूर्व कई देशों में मानव नाट्यमंच पश्चिम की तुलना में काफ़ी हद तक भिन्न रूप से विकसित हुआ। ईसा युग की शुरुआत तक पूर्व देशों में मानव नाट्यमंच यूरोप की तुलना में अभी भी मूक अभिनय विधि ही था, अर्थात् वृत्तांत वर्णन के साथ सर्वांग अभिनय किया जाता था। यहाँ तक कि आज भी एशिया में अनेक लोक नाट्य इसी का स्वरूप हैं।

यहाँ डोरी वाली पुतली के लिए 17वीं शताब्दी तक एक भी शब्द नहीं था। जब कि "मेरियोनेट" शब्द का अर्थ छोटी पुतली था, जो कि नाट्यमंचीय मूर्तियों के लिए प्रयुक्त होता था। इस बात में संदेह है कि मूल शब्द फ्रेंच "मैरियोनेट" ही था या फिर इतालवी "मैरियोनेट्टा"। हालाँकि फ्रेंच भाषा में इस शब्द का तात्पर्य सभी प्रकार की पुतली कलाओं से है, जबकि इटली और इंग्लैंड में केवल डोरीबद्ध पुतली है। यह इस बात का प्रमाण है कि संभवत: इटलीवासियों ने अपने देश में सदियों से फ्राँसीसी पुतलीकला को आते हुए देखा था, जो डोरीबद्ध पुतलियाँ रही होंगी।

जापान में आज भी पुतलियों को धार्मिक अनुष्ठानों के दौरान प्रयुक्त होते देखा जा सकता है। *बुनराकु, जापान्स यूनिक पपेट थियेटर,* 1964 में *शुजाबुरो हिरोनागा* इस बारे में कहते हैं कि "जापानी सभ्यता के प्रारंभिक काल में शिंटों मठ की सेवा में लगी कुमारियाँ जब प्रार्थना करती थीं तो दो गुड़ियों, प्रमुखत: एक नर एवं एक नारी का भी संचालन करती थीं। लगभग सातवीं शताब्दी के आसपास 'एशियाई घुमक्कड़ पुतली कलाकार', कोरिया के माध्यम से जापान में प्रवासित हुए। उन्हें बहिर्जातीय के रूप में देखा गया, जहाँ उन्हें *कैराएशी* या *कुगुत्सुमावाशी* के नाम से जाना गया।"

ये भ्रमणकारी मनोरंजनकर्त्ता अपने गले में एक पट्टे के द्वारा सामने की ओर लटकाए हुए लकड़ी की पेटी को वहन करके चलते हैं। वे घर-घर जाकर अँगुलियों के आकार की पुतलियों को पेटी से बाहर निकालते हैं और नाच दिखाकर भिक्षादान प्राप्त करते हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि कुछ पुरातन समाजों में महिलाएँ ओझा होती हैं और अपने धर्मानुष्ठानों में पुतलियों का उपयोग करती हैं। मेयर ने यह प्रमाणित किया है कि भारत में कथावाचन ईसा पूर्व से सदियों पहले ही चलन में था, जो पूर्व की ओर चीन और दक्षिण पूर्व इंडोनेशिया में तथा पश्चिम की ओर यूरोप में विस्तारित हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि भारतीय स्वरूप का यह प्रवास प्रसारण संचारण की विधि के रूप में था।

भारत से **खानाबदोश** (घुमंतू) जनजातियाँ **बाइजैनटियम** (तुर्की) से 1000 ईसवी में आई थीं। इसके साथ यह भी ज्ञात है कि ये खानाबदोश मनोरंजनकर्ता थे। यह ज्ञात नहीं है कि इनके साथ सचित्र कथावर्णक भी थे। ये जिप्सी (घुमंतू) जनजातियाँ उत्तर भारत से आईं थीं। *मेयर* के अनुसार सचित्र कथावाचन की विधा भारत से चीन एवं इंडोनेशिया तक पहुँची, जो इस बात का भी प्रमाण है कि चीनी एवं इंडोनेशियाई स्वरूप एक ही प्रकार का था और वास्तव में जावा एवं बाली का 'वायांग', वेबर

विधा की एकमात्र जीवित चीनी स्क्रोल (9वीं शताब्दी की अवधि) विधि के समान था। इतिहास से यह बिल्कुल स्पष्ट है कि सचित्र कथावाचन के विस्तार में इन दोनों देशों के लिए केवल खानाबदोश जनजाति ही ज़िम्मेदार नहीं है, बल्कि इन स्थानों पर इनका प्रसार निश्चित ही भारत से बौद्ध धर्म के प्रचार-प्रसार के साथ हुआ।

अब सवाल यह है कि पश्चिम के निवासियों ने सचित्र कथावाचन की विधि कैसे अपनाई? इस बारे में संभाव्य है कि जब खानाबदोश बाईजैंटियम पहुँचे तो उन्होंने अपने जीवकोपार्जन के लिए मनोरंजन का सहारा लिया हो। अतएव उन्होंने ऐसा करने के लिए जल्द से जल्द स्थानीय भाषा को सीख लिया। यह भी बहुत संभव है कि उन्होंने पहले अपने ही जैसे स्थानीय, गरीब वर्ग के लोगों का मनोरंजन किया हो। इस बात की बहुत संभावना है कि स्थानीय बाईजैंटाइन मनोरंजकों ने धीरे-धीरे जिप्सियों से यह मनोरंजन कला सीख ली हो। वास्तव में मेयर की पुस्तक में यूरोपीय सचित्र कथावाचकों के बारे में अनेक बातें अंकित की गई हैं। वे लोग निश्चित तौर पर जिप्सी ही जैसे लगते हैं।

अब यह प्रश्न खड़ा होता है कि क्या मध्ययुगीन पुतलीकला प्रदर्शन में पुतलियों के द्वारा संवाद उपयोग किए जाते थे या नहीं? इसके लिए *'रोमंस ड्यु बोन रोई ड अलेक्जेंडर'* के चौदहवीं शताब्दी के दो सुप्रसिद्ध चित्र प्रस्तुत किए गए हैं। हम पाते हैं कि यहाँ पर कोई व्याख्याकार दिखाई नहीं देता। यदि 1300 ई. के दौरान 'दस्ताना पुतली कला प्रदर्शन' प्रचलित था तो उसे चित्रकार द्वारा चित्रित कर दिया जाना चाहिए था। कारण, वह इस भाग का एक अभिन्न हिस्सा था, लेकिन उसे कहीं भी नहीं दिखाया गया। ये सारी बातें हमें इस निष्कर्ष की ओर ले जाती हैं कि मध्ययुगीन हस्त पुतली में पुतली कलाकार छुपकर पुतली के लिए संवाद बोलते थे।

चौदहवीं या पंद्रहवीं शताब्दी में पुतली कलाकारों ने धार्मिक विषयों के अतिरिक्त पुतली मंचन के लिए अन्य विषयों को खोजना शुरू किया। जब इसमें हास्य का पुट सम्मिलित होने लगा, तब चर्च ने तय किया कि अब पुतलियाँ उनकी शिक्षाओं के लिए अनुकूल नहीं हैं। हालाँकि तब तक पुतली ने नुक्कड़ों, गलियों तथा मेलों में अपना नया घर पा लिया था।

परच्शेक मानते हैं कि रोम के पतन के पश्चात् पपेट थियेटर पूर्णतः नष्ट हो गया था, क्योंकि सोलहवीं शताब्दी तक वास्तविक मैरियोनेट के बारे में कोई वर्णन नहीं है। लेकिन *बाईरोम* मानते हैं कि रोम के पतन के पश्चात् भी रोमन पारंपरिक पुतली थियेटर भूमिगत रूप से घुमंतु मनोरंजनकर्त्ताओं द्वारा जारी रहा।

'परंपरागत पुतली नाट्य', आरंभ से ही जनता के मनोरंजन हेतु समर्पित रहा है। यहाँ तक कि इसने शैक्षिक या धार्मिक ज़रूरतों को भी पूरा किया है। श्रोताओं के लिए चिर-परिचित पौराणिक कथाओं का भी इसमें प्रायः इस्तेमाल किया जाता रहा और इसीलिए ये आसानी से समझी जा सकती हैं और आनंद प्रदान करती हैं। वीरगाथाओं एवं पुराणों की कहानियाँ श्रोताओं या दर्शकों के मन में आनंद प्रदान करती हैं।

सजीव संगीत का उपयोग होता है। फलतः दर्शकों के बीच संपर्क कायम होता है। दर्शकों के मनोरंजन हेतु मुख्य नाट्य प्रायः नर्तक पुतली द्वारा प्रारंभ किया जाता है। हास्य चरित्र उदाहरण के तौर पर राजस्थानी सूत्र पुतलिका प्रदर्शन में ग्रामीण दर्शक पुतलियों के साथ गाने एवं नाचने के लिए आसानी से उत्तेजित हो जाते हैं।

खानाबदोश समूहों ने भारत में पुतलीकला को अत्यधिक बढ़ावा दिया। जहाँ महाराष्ट्र ने गुजरात से आए पुतली कलाकारों के प्रवास को देखा, वहीं 'पुतली', महाराष्ट्र से दक्षिण की ओर उन्मुख हुई तथा पूरे क्षेत्र में इस कला को फैला दिया। जैसा कि पारंपरिक पुतली कलाकार मुख्यतः भ्रमणकारी लोग थे, जो अपने प्रदर्शनों के लिए एक स्थान से, दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे। रजवाड़ों ने सदैव पुतली कलाकारों के माध्यम से जनता तक अपनी वीरता के किस्सों और कहानियों के वर्णन को सुनाने के साथ ही राजशाही राजाज्ञाओं तथा निर्देशों को आम जनता तक पहुँचवाया। संभवतः उस दौरान जनसंचार माध्यमों के अभाव में पुतलीकला ने प्रचार-प्रसार के लिए एक लोकप्रिय माध्यम का रूप ले लिया था। राजस्थान के अनेक राजाओं की शौर्य गाथाओं एवं शास्त्रधर्मों के किस्सों को डोर पुतली के माध्यम से जनता तक पहुँचाया गया।

जब तक पुतली में उपयुक्त इशारे और आवाज़ न जोड़ी जाए, तब तक परिचालन बेकार है। इनके बिना पुतलियाँ हिलते-डुलते कपड़ों का पिंड मात्र हैं। पुतली कलाकार अपनी पुतली को कैसे पकड़ता एवं संचालित करता है, यह महत्वपूर्ण है। उसकी अँगुलियाँ पुतली के ऊपरी जबड़े की रचना करती हैं। यदि वह उन्हें पीछे को खींचता है, तो उसकी पुतली के चेहरे से चबाना/कुचलना दिखता है। जब वह उसे खोलता एवं बंद करता है, तो उसकी पुतली बातें करती है। यदि वह अपनी अँगुलियों एवं कलाई की गतिविधि को मिश्रित करता है, तो उसकी पुतली सिर हिला सकती है और हाँ या नहीं में उत्तर दे सकती है या गर्दन के व्यायाम कर सकती है। एक पुतली कलाकार एक मृत सामग्री में जीवंत आत्मा भर देता है। ये पुतली कलाकार एवं इनके रचनाकार पूरी दुनिया को लगातार शिक्षित एवं उसका मनोरंजन करते रहें। अंततः पुतली कलाकार अपनी सृजनशीलता को जोड़े रहें और समाज उनपर विश्वास करता रहे।

संदर्भ

- द *नेशनल जियोग्राफिक मैगज़ीन*, Vol. 174, नं. 4, अक्टूबर 1988
- डेविड ए. फैरीज, "द *इटिनोलॉजी ऑफ स्पेनिश पपेट थियेटर*", 1985 जर्नल ऑफ हिस्पैनिक, पिथोलोजी, Vol. X नं. 11
- विक्टर एच, *मेयर्स पेंटिग एंड परफॉर्मेंस फिगर* 28 पृ. 151, फॉर द इनग्रेविंग डेटेड सी. 1480-1490
- "द *ओरिजंस ऑफ चाइनीज़ शेडो पपेट थियेटर*", एशिया मेज, Vol. XIII, पार्ट 1, 2000
- रेमो बूफनो *बुक ऑफ पपेटरी*, आर्थर रिचमंड, 1960, द मैकमिलन कंपनी, न्यूयॉर्क

- *द कम्पलीट पपेट बुक*, एल.वी. वाल, 1956, फेबर एंड फेबर लिमिटेड, लंदन
- *मेकिंग ए स्टार्ट विद मेरियनेट्टस एरिक ब्रमाल*, 1960, जी. बेल एंड संस लिमिटेड, लंदन
- *पपेट एंड प्लेज़*, मारज़ोरी बट्चैल्दर एंड वर्जीनिया ली कोमर, 1959, फेबर एंड फेबर लिमिटेड, लंदन
- समर, देवीलाल, *कठपुतली–परंपरा और प्रयोग*, उदयपुर भारतीय लोक कला मंडल, 1972

***

बच्चे के सर्वांगीण विकास में माता-पिता और शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसलिए प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा सुविधाओं की जानकारी अभिभावकों को भी होनी ज़रूरी है। व्यापक स्तर पर माता-पिता और परिजनों को प्रशिक्षित किए जाने की आवश्यकता है। इसी आवश्यकता पर बल दे रहा है प्रस्तुत लेख।

गृह-शिक्षक के रूप में अभिभावक

पद्मा यादव*

बच्चों के शारीरिक एवं मानसिक विकास में परिवार और विद्यालय, दोनों की अहम् भूमिका होती है। प्रत्येक समाज बच्चों के लिए यथासंभव अच्छी शिक्षा की व्यवस्था करता है। इस तथ्य को अब सभी स्वीकार करते हैं कि शिशु के सर्वांगीण विकास के लिए, विशेष रूप से वंचित वर्ग के शिशु के विकास के लिए, प्रारंभिक बाल शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। इस विषय पर पर्याप्त शोध कार्य किया जा चुका है। शोध परिणामों के आधार पर स्पष्ट है कि पूर्व प्राथमिक शिक्षा बच्चों की आगे की शिक्षा और जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण घटक साबित होती है। परिणामस्वरूप प्रारंभिक बाल देखभाल एवं शिक्षा सुविधाओं में सरकारी तथा गैर सरकारी अभिकरणों द्वारा काफी विस्तार भी हुआ है। अत: जो साधन उपलब्ध हैं उनका सदुपयोग होना चाहिए। इसलिए इनकी जानकारी अभिभावकों को भी होना ज़रूरी है।

हमें इस तथ्य को स्वीकारना होगा कि बच्चों के जीवन के प्रारंभ के 8 वर्ष उनके व्यक्तित्व विकास की अत्यंत नाजुक अवस्था है और इसका असर बाद के जीवन और शिक्षा पर होता है। बच्चे जन्म से ही बुद्धि-प्रतिभा से संपन्न होते हैं और आने वाले समाज का निर्माण करते हैं। परन्तु लंबे समय तक वे बड़ों पर आश्रित रहते हैं। उचित अवसरों को पाकर उनसे क्रिया-प्रतिक्रिया कर वे सीखते हैं और उनके विकास को गति मिलती है। बच्चे का जन्म परिवार में होता है। अत: वह सबसे पहले माता-पिता के संपर्क में आता है। उसका अधिकतम समय माता-पिता एवं परिवारजनों के साथ ही व्यतीत होता है। माता-पिता का फर्ज़ है कि वे बच्चे का पालन-पोषण करें।

बच्चों के पालन-पोषण करने का तात्पर्य अधिकतर लोग केवल पौष्टिक भोजन और साफ-सुथरे कपड़े प्रदान करने तक ही समझते हैं। तो कुछ माता-पिता भोजन और कपड़ों के साथ-साथ जल्दी से जल्दी अच्छे से अच्छे (जिनको वो अच्छा समझते हैं) स्कूल में बच्चों का दाखिला करवा कर अपने आप में निश्चिंत हो जाते हैं कि हम अपना कर्त्तव्य अच्छी तरह से निभा रहे हैं।

* प्रवक्ता, प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली-110016

अक्सर माता-पिता एवं परिवारजनों को बाल विकास में अपनी अहम् भूमिका का ज्ञान नहीं होता। उन्हें इस बात की जानकारी नहीं होती कि बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में उनकी मुख्य भूमिका है।

आज सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों के कारण भारतीय माताएँ अपने पुरातन संस्कारों को छोड़ती जा रही हैं। इसका कारण संयुक्त परिवारों का विघटन तथा नौकरी की तलाश में मूल स्थान छोड़ना भी है। परिणामस्वरूप बच्चों के पालन-पोषण के परंपरागत तरीके तेज़ी से बदलते जा रहे हैं। अब पुराने खेल, गीत, कहानियाँ, घरेलू खिलौने जो बच्चों के माता-पिता तथा घर के बड़े-बूढ़े, दादा-दादी आदि उपयोग में लाते थे, उनका उपयोग लगभग समाप्त होता जा रहा है। संयुक्त परिवार में सगे-संबंधियों के बच्चे भी होते थे। सब मिलकर खाते-पीते, खेलते और एक-दूसरे से सीखते भी थे। आज के छोटे परिवार में इन सब की कोई संभावना नहीं है।

बहुत से माता-पिता प्रारंभिक बाल्यावस्था की उत्प्रेरक गतिविधियों की महत्ता व प्रासंगिकता को मानते ही नहीं, तो कुछ उन्हें यांत्रिक रूप से प्रयोग में लाते हैं। कुछ माता-पिता को इनका ज्ञान ही नहीं होता और वे बच्चों को घर पर अनावश्यक औपचारिक शिक्षा के बोझ तले दबा देते हैं। अभिभावकों को चाहिए कि अपनी समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से प्राप्त बाल संबंधित खेल, क्रियाकलाप, कहानियाँ और गीतों का प्रयोग बच्चे के साथ करें। बच्चा प्रतिदिन परिवार के सदस्यों के साथ अनेक प्रकार की पारस्परिक क्रियाएँ करके अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा प्राप्त करता है। माता-पिता जब घर में एक प्रेमपूर्ण सीखने का वातावरण बनाते हैं, तो बच्चों के भीतर सुरक्षा और सीखने की जिज्ञासा पैदा होती है।

प्रत्येक बच्चे का अपना अलग अस्तित्व होता है। उसके विकास को उसी दिशा में परिवर्तन मिलना चाहिए। बच्चे के स्वास्थ्य व संतुलित मानसिक विकास में माता-पिता के प्यार, सानिध्य, सहयोग, उचित मार्गदर्शन का महत्त्व सर्वोपरि है। महज भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति ही प्यार व स्नेह का मापदंड नहीं हैं, माँ-बाप का सानिध्य, स्नेह, उसके अस्तित्त्व की पहचान, बच्चे के मानसिक विकास को अधिक प्रभावित करते हैं।

शिक्षा का उद्देश्य है—आदतों का विकास करना। शिक्षण में आदतों का पहला स्थान है, क्योंकि स्कूल पूर्व शिक्षा आदतों से ही शुरू होती है। यह प्रारंभिक वर्षों से ही देखना होगा कि बच्चा ऐसी आदतों के अभ्यास से बचे जो उसके जीवन और शिक्षायी प्रक्रिया पर बुरा असर डालते हों। 3 से 6 वर्ष के बीच ही उसे संकल्प, कार्यशीलता, लगन और अभ्यास की ओर प्रेरित करना चाहिए, तब स्कूल के विधिवत् शिक्षण के लिए वह पूरी तरह तैयार हो सकेगा। 0 से साढ़े 3 साल तक के बच्चों को माता द्वारा प्रशिक्षण व तीन से छः वर्ष के बच्चों का नर्सरी या आँगनवाड़ी द्वारा प्रशिक्षण का इसलिए बहुत महत्त्व है।

नर्सरी आँगनवाड़ी, मांटेसरी स्कूलों में एकदम पुस्तकों से नहीं पढ़ाया जाता, अगर कहीं पढ़ाया जाता है तो वह गलत है। इसलिए उसके पहले

बच्चों को घर पर अक्षर ज्ञान देना ज़रूरी नहीं। घर पर कहानियों, गीतों, खिलौनों और तस्वीरों के माध्यम से अच्छी सामान्य बातों की शिक्षा देकर भी पढ़ने-सीखने में उसकी रुचि बढ़ाई जा सकती है। सामान्य ज्ञानवर्धन के लिए कभी-कभी बाहर ले जाकर उसे प्राकृतिक वस्तुओं और बाहरी व्यवहारों की जानकारी दी जानी चाहिए। हर रोज सैर के समय भी उसकी जिज्ञासाओं की पूर्ति करते हुए छोटी-मोटी जानकारियाँ दी जा सकती हैं।

जब बच्चा अपने घर की सुरक्षा छोड़कर केंद्र में आता है तो उसे वैसी ही सुरक्षा और प्यार मिलना चाहिए। तभी वह केंद्र में आसानी से घुल-मिल पाएगा, खुश रहेगा और उसका उचित विकास होगा। माता-पिता को चाहिए वे आगे बढ़कर उनके अपने बच्चों की शिक्षा या सर्वांगीण विकास के कार्यक्रम का नियोजन या क्रियान्वयन करें और शिक्षिका की सहायता करें।

प्राय: देखा गया है कि माता-पिता एवं शिक्षकों में कुछ बातों को लेकर मतभेद होता है जिसका असर बच्चों पर पड़ता है। माता-पिता चाहते हैं कि बच्चों को पूर्व प्राथमिक शिक्षा अँग्रेज़ी भाषा में दी जाए। वे विद्यालयों के प्रशासन पर ज़ोर डालते हैं कि बच्चों के साथ अँग्रेज़ी में बात की जाए, अँग्रेज़ी पढ़ाई जाए ताकि वे आने वाले समय में सुदृढ़ अँग्रेज़ी बोल सकें, पढ़ सकें। अभिभावकगण चाहते हैं कि बच्चों को अधिक से अधिक सिखाया जाए। उन्हें लिखने, पढ़ने और गणित का ज्ञान दिया जाए। गृहकार्य दिया जाए, टैस्ट लिया जाए, बच्चों को अंक दिए जाएँ, फिर उन्हें उनके बच्चे की कक्षा में स्थिति बताई जाए।

अज्ञानता के कारण वे ऐसे पाठ्यक्रम की आशा रखते हैं जो विकासात्मक स्तर एवं आयु स्तर के आधार पर नहीं होता और अधिक बोझिल होता है। स्कूल भी ज़्यादा से ज़्यादा दाखिले कर अधिक से अधिक धन कमाने की लालसा रखते हुए, माता-पिता की गलत माँग को पूरा करने के लिए मज़बूर हो जाते हैं। कभी-कभी दूसरों की देखा-देखी गलती करते हैं। यदि एक स्कूल गलत कर रहा है तो दूसरे भी ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने की होड़ में पूर्व प्राथमिक शिक्षा के सैद्धांतिक मूल्यों की बलि चढ़ा देते हैं।

कई बार माता-पिता जागरूक होते हैं, उन्हें पता होता है कि गलत हो रहा है पर वे स्कूल के साथ बैठकर विचार-विमर्श नहीं करते और स्कूलों की मनमानी के शिकार होते रहते हैं। हम जिस सहभागिता की बात करते हैं, वह कहीं खो सी गई है। बल्कि यूँ कहें कि नज़र ही नहीं आती। अत: शिक्षक को चाहिए कि वह पूर्व प्राथमिक शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा का लघु रूप न मानें बल्कि बच्चों को इस प्रकार तैयार करें कि वे प्राथमिक शिक्षा के सफ़र को भली प्रकार पूरा कर सकें। साथ ही बाल मनोविज्ञान को ध्यान में रखते हुए बच्चों पर बढ़ते बोझ को रोकें। समूह गतिविधियों, खेल-खेल में शिक्षा की तकनीकों, भाषा खेलों, संख्या खेलों को बढ़ावा दें। इससे बच्चे सीखने के लिए तैयार होंगे और बच्चों पर से अस्वास्थ्यकर एवं हानिकारक बोझ कम होगा।

इस बात की समझ की बड़ी आवश्यकता है कि बच्चों को पूर्व प्राथमिक शिक्षा के स्तर पर क्या सिखाया जाए और क्या नहीं सिखाया जाए? शिक्षकों को इसकी जानकारी तो होनी ही चाहिए और उन्हें चाहिए कि वे अभिभावकों को भी इसकी जानकारी दें।

शिक्षिका माता-पिता की सहायता कैसे करें?

व्यापक स्तर पर माता-पिता एवं परिवारजनों को प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। विद्यालय के सदस्यों/शिक्षकों का दायित्त्व होना चाहिए कि वे माता-पिता की सहायता करें। समय-समय पर ऐसे कार्यक्रमों का आयोजन करें जिनसे कि उन्हें बाल विकास व शिक्षा का ज्ञान एवं कौशल मिल सके और वे शिशु के अभिभावक के रूप में अधिक सफल व प्रभावी सिद्ध हो सकें। अत: प्रचार तंत्र के सभी साधनों से दूरदर्शन, आकाशवाणी, पत्र-पत्रिकाएँ, ग्रामीण केंद्रों पर भीत्ति-चित्रों की सहायता से, बाल मेले का आयोजन, कठपुतली प्रदर्शन, मौखिक जानकारी देने तथा संबंधित उपयोगी साहित्य के प्रकाशन व प्रसार को इस ओर मोड़ा जाना चाहिए। प्रौढ़ शिक्षा के केंद्र भी इस कार्यक्रम को सफल बनाने में अपनी भूमिका निभा सकते हैं क्योंकि उनका उद्देश्य मात्र साक्षरता नहीं, व्यापक सामाजिक शिक्षा और उन्नत परिवार की शिक्षा भी है।

शिक्षिका माता-पिता का सहयोग कैसे प्राप्त कर सकती हैं?

- शिक्षक विभिन्न क्रियाकलापों के द्वारा समय-समय पर माता-पिता का सहयोग प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षकों को चाहिए कि वे बच्चों के अभिभावकों के बारे में थोड़ी जानकारी प्राप्त करें।
- जिन अभिभावकों में कोई विशेष कौशल या प्रतिभा हो तो उनका उपयोग बच्चों के लाभ के लिए कर सकते हैं। उदाहरण के तौर पर जो माताएँ अच्छा गाती हों वे बच्चों को गाना सिखा सकती हैं। कोई अभिभावक बच्चों को कहानियाँ सुनाने, कठपुतली का खेल दिखाने, खेल खिलाने या छोटी-छोटी कविताएँ या गीत सिखाने में रुचि रख सकते हैं।
- बच्चों को इस उम्र में कई प्रकार की सृजनात्मक क्रियाएँ करायी जाती हैं ताकि उनकी छोटी मांसपेशियों का विकास हो। इसके लिए सामग्री और कच्चा माल जुटाने में अभिभावक शिक्षिका की मदद कर सकते हैं।
- जब शिक्षिका किसी अन्य कार्य में व्यस्त हो तो अभिभावक उनका स्थान ले सकते हैं।
- कहानी सुनाने, सृजनात्मक क्रियाएँ करवाने अथवा बच्चों को भ्रमण के लिए ले जाते समय, शिक्षिका का साथ देकर छोटे-छोटे समूह में की जाने वाली क्रियाओं में अभिभावक अतिरिक्त व्यस्क के रूप में सहायता कर सकते हैं।
- अभिभावक जब बच्चों को छोड़ने या लेने आते हैं या जब कभी अचानक शिक्षक/शिक्षिका से मिलते हैं, उस वार्तालाप में शिक्षिका अभिभावक के सामने अपनी बात रख सकती है।

- विद्यालय में हर तीन महीने में अभिभावक और शिक्षिका के बीच बैठकें होती हैं। ये बैठकें भी माता-पिता को उनकी भूमिका सशक्त बनाने में मदद करती हैं। कभी-कभार बच्चों के घर का दौरा भी किया जा सकता है। बाल मेले का आयोजन भी एक महत्वपूर्ण क्रिया है जहाँ माता-पिता और अध्यापक आपस में मिलते-जुलते हैं।
- यदि अभिभावक पढ़े-लिखे और समझदार हों तो एक समाचार पत्र भी निकाला जा सकता है।
- बच्चों पर आधारित फिल्में भी माता-पिता एवं शिक्षकों को शिक्षित करने का अच्छा साधन हैं।

सहयोग लेने या देने की प्रक्रिया में ही अभिभावक प्रारंभिक बाल शिक्षा के सिद्धांतों एवं क्रियाकलापों से परिचित हो सकते हैं। बच्चों को जो कुछ सिखाया जाता है उसके सबलीकरण के लिए भी माता-पिता की शिक्षा आवश्यक है। माता-पिता को उनके शिशु की प्रगति की सूचना बराबर मिलती रहनी चाहिए। साथ ही माता-पिता को भी कुछ बुनियादी बातें जैसे-शिशु की देखभाल, उसके स्वास्थ्य एवं पोषण, खेलों का महत्त्व, शिशु विकास के लिए उद्दीपन क्रियाएं, खेल विधियाँ, उनकी आवश्यकता एवं उद्देश्य और बाल-विकास में माता-पिता की भूमिका, कविता पाठ, कहानी सुनाने, कठपुतलियाँ बनाने की सरल विधियाँ सिखाई जा सकती हैं जिससे उनके और बच्चे के पारस्परिक संबंधों की गुणवत्ता में भी सुधार आ सकता है।

शिक्षक/शिक्षिकाओं एवं माता-पिता को मिलकर यह प्रयास करना चाहिए कि बच्चा सीख सके और आगे बढ़ सके।

***

पाठ्यपुस्तकें शिक्षण का एक साधन मात्र हैं एकमात्र साधन नहीं। लेकिन दुर्भाग्य से अधिकांश शिक्षक बच्चों को पढ़ाते समय केवल पाठ्यपुस्तकों के ही आश्रित रहते हैं। अगर परिवेश को भी एक साधन बनाकर बच्चों को पढ़ाया जाए तो बच्चे सीखेंगे भी और स्वयं कुछ करके सीखने के कारण प्राप्त ज्ञान भी स्थायी बन जाएगा।

पाठ्यपुस्तकों से हटकर शिक्षा

वि.वि. सिंह*

पाठ्यपुस्तकों के रूप में ढेर सारी सामग्री बच्चों को दी जाए, वे उन्हें पढ़कर, रटकर, परीक्षा में उनको उसी रूप में प्रस्तुत कर दें और अधिक-से-अधिक अंक प्राप्त कर लें; यह हमारी शिक्षा के दायरे को अति संकीर्ण बना देता है।

बच्चों में समझ विकसित हो, वे स्वयं जानकारी हासिल करें, वे तरीके जानें, जिनसे जानकारी प्राप्त की जा सकती है और उम्र व अनुभव बढ़ने के साथ-साथ प्राप्त जानकारी एवं संकलित तथ्यों का विश्लेषण कर सकें और स्वयं निष्कर्ष निकाल सकें - यह वास्तविक शिक्षा है और यही हमारा प्रयास होना चाहिए। इससे उनकी अवलोकन क्षमता का विकास होगा और उनकी सोचने, समझने की क्षमता बढ़ेगी। तभी वे व्यावहारिक बन सकेंगे। उनमें मौलिक सोच और स्वयं निर्णय लेने की क्षमता विकसित होगी।

हमें वे तरीके सोचने होंगे, जिनके माध्यम से हम बच्चों को उपर्युक्त अनुभव दे सकें। कुछ प्रयोग जो हम लोगों ने आजमाए, उनकी चर्चा करना चाहूँगी।

हमारे विद्यालय से लगभग पौन कि.मी. पर नीमचखेड़ा गाँव है। उस गाँव की जानकारी प्राप्त करने के लिए बच्चों की सहायता से एक प्रश्नावली तैयार की गई। इसमें ऐसे प्रश्न रखे गए, जिनके उत्तर बच्चे स्वयं देखकर या पूछकर जान सकते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं - गाँव में कितने पक्के और कितने कच्चे मकान बने हुए हैं? पूरे गाँव में कितने हैंडपंप हैं? कितने विद्यालय हैं? वे किस स्तर के हैं? क्या गाँव में कोई धार्मिक स्थल है? क्या दैनिक आवश्यकता की सामग्री खरीदने हेतु दुकानें हैं? गाँव में अधिकतर लोगों के जीविकोपार्जन के क्या साधन हैं? गाँव का नाम कैसे पड़ा? गाँव में कौन-कौन से त्योहार मनाए जाते हैं? आदि।

* 17, टैक्नोक्रेट सोसाइटी, बेदला रोड, उदयपुर-313011 (राजस्थान)

कक्षा 5 के बच्चों ने सामाजिक विज्ञान की अध्यापिका के साथ गाँव में जाकर 5 समूहों में बँटकर जानकारी प्राप्त की और फिर एक रिपोर्ट तैयार की।

छोटे स्तर पर किए गए इस सर्वेक्षण से बच्चों को कक्षा-कक्ष से बाहर निकलकर स्वयं जानकारी प्राप्त करने का अनुभव प्राप्त हुआ।

हमारे स्कूल का कैंपस बहुत बड़ा है। तमाम पेड़-पौधे, वनस्पति कैंपस में ही विद्यमान हैं, अनेकों पक्षी दिखाई देते हैं, स्कूल में काफ़ी मूर्तियाँ लगी हैं जो मुख्यत: वैज्ञानिकों एवं साहित्यकारों की हैं। कई पट्टिकाएँ लगी हुई हैं, जिनसे ज्ञात होता है कि अमुक बिल्डिंग, हॉल या कमरा किस अवसर पर, किस सन् में बना, उद्घाटन किसके द्वारा किया गया। बच्चों को एक दिन दो कालांशों में यह जानकारी समूहों में प्राप्त करनी थी। अपनी नोट बुक्स लेकर वे निकल पड़े और दौड़-दौड़ कर अतीव उत्साह से जानकारी एकत्र कर ली।

पेड़-पौधों के नाम के साथ उनकी पहचान भी उन्हें हुई।

उदयपुर में पश्चिमी क्षेत्र सांस्कृतिक केंद्र द्वारा निर्मित एवं संचालित शिल्प ग्राम स्कूल से लगभग 5 किलोमीटर पर स्थित है। शैक्षिक भ्रमण के अंतर्गत सभी बच्चों को वहाँ पैदल ले जाया गया। लंच बॉक्स व पानी की बोतल भी बच्चों के साथ थी। फतहसागर के किनारे चलते-चलते 5 किमी. की दूरी भी अधिक प्रतीत नहीं हुई। वहाँ का भव्य मुख्यद्वार, अंदर जगह-जगह बनाई गई अलग-अलग राज्यों की शैली में कलाकृतियाँ व झोपड़ियाँ देखने में सभी को आनंद आया। कुछ जानकारियाँ जो बच्चों को पता करनी थी, उसके कुछ नमूने इस प्रकार है- शिल्प ग्राम का उद्घाटन कब व किसके द्वारा हुआ? वहाँ कौन-कौन से राज्यों की झोपड़ियाँ बनी हुई है? शिल्पग्राम में कौन-कौन से उत्सव आयोजित होते हैं तथा वे किस समय मनाए जाते हैं? शिल्प ग्राम कितने बीघा भूमि पर बना हुआ है? पीने का पानी कहाँ-कहाँ उपलब्ध है? शिल्पग्राम संग्रहालय की क्या विशेषता है? वार्ली पेंटिंग किस राज्य की विशेषता है? आदि।

छोटे-छोटे समूहों में बच्चों ने इन प्रश्नों के उत्तर पता किए और अपनी डायरी में नोट किए। मुक्ताकाशी रंगमंच भी आकर्षण का केंद्र रहा। बच्चों ने उस पर सांस्कृतिक प्रस्तुतियाँ भी दीं। इस तरह पूरे दिन एक अलग तरह का अनुभव पाकर सभी बच्चे बड़े प्रसन्न नज़र आ रहे थे।

स्कूल कैंपस से दिखती एक पहाड़ी पर अवस्थित नीमचमाता का मंदिर हम सबके लिए हमेशा से आकर्षण, आनंद व आस्था का केंद्र बिंदु रहा है। 800 मीटर लंबाई का रास्ता तय करके लगभग 600 फीट ऊँचाई पर पहुँचकर एक अलग तरह की आनंदानुभूति होती है। विद्यालय की स्थापना के 76-77 वर्षों से नीमचमाता की पहाड़ी विद्यार्थियों एवं शिक्षकों को ऊँचाइयों को छूने की प्रेरणा देती रही है।

एक दिन हम लोगों ने यह तय किया कि स्कूल के आधे समय में अर्थात् 4 कालांशों में कक्षा 5 के दोनों वर्गों के लगभग 60-65

बच्चे ऊपर चढ़कर जाएँगे और अलग-अलग तरह की जानकारी एकत्र करेंगे। उदाहरणार्थ-

1. नीमचमाता पहाड़ी पर कौन-कौन से पेड़-पौधे दिखाई देते हैं?
2. वर्ष में किन दिनों यहाँ सबसे ज़्यादा भीड़ होती है? सप्ताह के किस दिन अधिक लोग दर्शनार्थ आते हैं?
3. मंदिर मार्ग एवं मंदिर के आसपास जो संदेश लिखे हैं, उनमें से जो आपको अच्छे लगे ऐसे 5 संदेश लिखिए।
4. मंदिर के रास्ते पर कितनी जगह पीने के पानी की सुविधा है?
5. ऊपर पहुँचकर मंदिर से उदयपुर के कौन-कौन से क्षेत्र दिखाई देते है? आदि।

मंदिर में उन दिनों कुछ विस्तार कार्य चल रहा था। ईंटें व रेती ऊपर तक पहुँचाने का एक तरीका निकाला गया था। चढ़ाई शुरू करने से पूर्व ही एक ओर रेती भरी हुई कपड़े की थैलियाँ तथा ईंटें रखी गई थी। लोग अपनी श्रद्धा व इच्छा से वह सामग्री ऊपर ले जाते। हमारे बच्चे भी खुशी-खुशी थैलियाँ और एक या दोनों हाथों में एक-एक ईंट उठाकर ऊपर चढ़े।

अगले दिन बच्चों को उन सभी बातों को व्यवस्थित एवं संक्षिप्त रूप में लिखकर सभी बच्चों के सम्मुख प्रस्तुत करना था। 5-6 बच्चों के समूह में एक को यह प्रस्तुति करनी थी। काफ़ी जानकारी बच्चों ने एकत्र की थी। विशेषकर पहाड़ी मार्ग पर व ऊपर भी पट्टिकाओं में लिखकर लगाई गई नीति संबंधी बातों को उन्होंने संकलित किया था। एक समूह के बच्चों ने मंदिर के प्रवेश द्वार पर काफ़ी ऊँचाई पर लिखा संस्कृत का श्लोक भी सुनाया। शारीरिक श्रम, आनंद प्राप्ति के साथ ज्ञानार्जन का यह अनूठा अनुभव था। ऐसे अनुभव बच्चों को बार-बार दिए जाने चाहिए।

हमारे विद्यालय की एक विशिष्ट प्रवृत्ति वनशाला में 8-9 दिन के लिए स्कूल से बाहर जाकर कैंप स्थल के आसपास के स्थानों की जानकारी प्राप्त की जाती है। वनशाला में कुछ अध्ययन समूह (श्रेणी) यथा साहित्य श्रेणी, पर्यावरण अध्ययन श्रेणी, सामाजिक श्रेणी, कला एवं संगीत श्रेणी आदि बनाई जाती हैं। साहित्य श्रेणी के विद्यार्थी स्थानीय लोगों से मिलकर वहाँ प्रचलित लोक कथाओं, लोक गीतों, लोकोक्तियों का संकलन करते हैं। स्थानीय बोली के कुछ शब्दों के समानार्थक हिंदी शब्दों के चार्ट तैयार करते हैं। पर्यावरण अध्ययन श्रेणी के अंतर्गत स्थानीय वनस्पति, प्रमुख उपज, वहाँ पाए जाने वाले पशुओं-पक्षियों, वहाँ की मिट्टी, जलस्रोत आदि की जानकारी प्राप्त करते हैं और उन्हें चार्ट व नक्शों पर दर्शाते हैं। कुछ बच्चे लेख लिखते हैं, संग्रह तैयार करते हैं या मॉडल बनाते हैं। सामाजिक श्रेणी में मुख्य रूप से स्थानीय लोगों का रहन-सहन, भोजन, रीति-रिवाज़, मान्यताएँ, त्योहार, प्रमुख व्यवसाय, आवागमन के साधन आदि का पता लगाते हैं। कला श्रेणी के बच्चे वहाँ के माँडने, कलाकृतियों, संगीत, नृत्य आदि से संबंधित जानकारी प्राप्त करते हैं। पाठ्यपुस्तकों से हटकर यह जानकारी बच्चों के लिए बहुत उपयोग होती है और यह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण होता है कि बच्चे स्वयं ज्ञान अर्जित करते हैं और इस तरह वे उन तरीकों से

भी अवगत हो जाते हैं जिनसे ज्ञानार्जन किया जा सकता है और यह अनुभव उन्हें जीवन में आगे काम आता है।

एक बार वनशाला के लिए जो स्थल चुना गया उसके रास्ते में कई दर्शनीय व धार्मिक स्थल थे। ऐसा तय हुआ कि हम बस से जाते हुए इन स्थलों पर रुक कर जानकारी प्राप्त करेंगे। दो तरह की प्रश्नावलियाँ तैयार कर ली गईं। अपेक्षित संख्या में उनकी प्रतिलिपियाँ जुटाई गईं।

कक्षा 4 व 5 के बच्चे थे, उन बच्चों को 5-6 के समूहों में बाँट दिया गया। एक बच्चे को नेतृत्व करना था। बच्चों में लोगों से पूछ-पूछकर प्रश्नावलियाँ भरने के प्रति अत्यधिक उत्साह नज़र आया। एक स्थल पर बस के रुकते ही बच्चे बड़ी फुर्ती से बसों से उतरकर अपने-अपने समूह में जाकर जानकारी हासिल करने लगते। वहाँ के व्यवस्थापकों, कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त दर्शनार्थियों एवं भ्रमणार्थियों से भी वे बातचीत करने में हिचकिचाते नहीं। इन स्थलों पर लगी हुई पट्टिकाओं एवं उपलब्ध प्रकाशित सामग्री से भी आवश्यक सूचनाएँ नोट कर लेते।

वनशाला स्थल पर पहुँचकर उन्होंने संपूर्ण जानकारी को चार्ट्स के रूप में शीटस् पर लिखा। जब उन्हें प्रदर्शित (display) किया गया तो बच्चे एक-दूसरे के चार्ट्स को पढ़कर आनंदित हो रहे थे और कुछ उन बातों को पढ़कर जो वे पता नहीं लगा सके थे, चकित थे। वे आपस में चर्चा कर रहे थे कि अमुक बात कहाँ से पता लगी?

इसी प्रकार विद्यालय की दूसरी विशिष्ट प्रवृत्ति वार्षिकोत्सव प्रायोजना अनौपचारिक शिक्षा का एक सशक्त माध्यम है, जिसमें विद्यार्थी पाठ्यपुस्तकों एवं पाठ्यक्रम से हटकर बहुत कुछ सीखते हैं। इसके अंतर्गत किसी एक विषय का चयन कर, विभिन्न पहलुओं से अध्ययन समूह (श्रेणी) बना लिए जाते हैं। विद्यार्थी अपनी श्रेणी से संबंधित जानकारी प्राप्त कर लेख, चार्ट्स, नक्शे, समय रेखा, कालचक्र, चित्र, मॉडल, संकलन आदि तैयार करते हैं। परियोजना का दूसरा पक्ष पेजेंट है। मंच पर बिभिन्न विधाओं के माध्यमों से प्रस्तुत कार्यक्रम द्वारा जहाँ बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं वहीं शिक्षकों के लिए भी यह कार्य बड़ा चुनौतीपूर्ण होता है। ज्ञानार्जन के साथ-साथ उनकी भी ट्रेनिंग होती है। प्रति दूसरे वर्ष लिए जाने वाले विषयों में कुछ इस प्रकार हैं- हिमालय, भारत के पड़ोसी देश, राजस्थान की जन-जातियाँ, भारत - विभिन्न धर्मों का संगम, जल और जीवन आदि।

'जल और जीवन' विषय पर काम करते हुए बच्चों ने साहित्य श्रेणी में जल से संबंधित कविताओं, गीतों का संकलन किया, जल का भौगोलिक दृष्टि से महत्त्व, वैज्ञानिक दृष्टिकोण से जल संबंधी अध्ययन किया। स्वयं जल के नमूनों के परीक्षण किए। विभिन्न जल स्रोतों की व्यथा को काव्य रूपक के रूप में, अतिवृष्टि के कारण बाढ़, अनावृष्टि के कारण अकाल आदि की नाट्य रूप में प्रस्तुति अत्यंत प्रभावपूर्ण रही। शायद पुस्तक में पढ़े किसी पाठ से अधिक बच्चों ने इस तरह से जाना और सीखा।

गांधी जी के अनुसार पाठ्यपुस्तकों को शिक्षण का माध्यम माना जाए तब तो शिक्षक

की वाणी की शायद ही कोई कीमत रह जाए। जो शिक्षक पाठ्यपुस्तकों में से सिखता है, वह अपने विद्यार्थियों को स्वतंत्र और मौलिक विचार करने की शक्ति नहीं देता। इससे शिक्षक स्वयं पाठ्यपुस्तक का गुलाम बन जाता है और उसे अपनी स्वतंत्र प्रतिभा दिखाने का मौका ही नहीं मिला पाता। इससे मालूम होता है कि पाठ्य पुस्तकें जितनी कम होंगी, उतना ही शिक्षकों और विद्यार्थियों को लाभ होगा।

गांधीजी ने शिक्षा के मूल्य को भी मानवोपयोगी बनाया और समाज के अनुरूप उसे ढालने का प्रयास किया। उनका कहना था कि शिक्षा का संबंध जीवन से है अत: शिक्षा और जीवन का आपसी तालमेल ठीक होना चाहिए।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में भी "ज्ञान को स्कूल के बाहरी जीवन से जोड़ना, पढ़ाई रटंत प्रणाली से मुक्त हो यह सुनिश्चित करना, पाठ्यचर्या का इस तरह संवर्धन कि बच्चों को चहुँमुखी विकास के अवसर मुहैया करवाए जाएँ बजाए इसके कि वह पाठ्यपुस्तक केंद्रित बन कर रह जाए आदि निर्देशक सिद्धांतों को प्रस्तावित किया गया है। बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करने हेतु स्कूलों द्वारा ऐसे अवसर प्रदान किए जाने चाहिए ताकि बच्चे प्रश्न पूछकर और चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात् करें या नए विचार रचें। सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है आसपास के वातावरण, प्रकृति, चीज़ों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अंत:क्रिया करना। इधर-उधर घूमना, खोजना, अकेले काम करना या अपने दोस्तों या वयस्कों के साथ काम करना, भाषा को पढ़ना, अभिव्यक्त करना, पूछने और सुनने के लिए प्रयोग करना, ये कुछ ऐसी महत्वपूर्ण क्रियाएँ हैं, जिनसे सीखना संभव होता है।

***

गिजुभाई वकील का पेशा छोड़कर शिक्षक बने थे, अपनी शिक्षा के दौरान उनके साथ जो अमानवीय सलूक हुआ था वह नहीं चाहते थे कि वह उनके स्वयं के बच्चों और देश के अन्य बच्चों के साथ हो, यही कारण था कि उन्होंने वकालत छोड़ दी पर बच्चों के वकील वे ताउम्र बने रहे।

बच्चों के वकील*

के. आर. शर्मा

गिजु भाई का नाम लेते ही एक ऐसे व्यक्ति की तस्वीर उभरकर आती है, जो शिक्षा में अनंत आस्था रखता था। गिजु भाई का मानना था कि शिक्षा के माध्यम से समाज में बदलाव लाया जा सकता है। बच्चों के व्यक्तित्व को शिक्षा के माध्यम से आकार दिया जा सकता है, लेकिन वे व्यथित थे कि जो शिक्षा दी जा रही है, वह कल के नागरिकों के लिए बेहतर परिस्थितियाँ पैदा नहीं कर पा रही है।

ऐसा नहीं है, कि शिक्षा के मामले में हमारे यहाँ पर अँग्रेज़ जो विरासत में छोड़ गए थे, वही सब कुछ है। बल्कि अँग्रेज़ों के राज में भी नए विचार पनपते रहे और उनको मैदानी स्तर पर लागू करके भी दिखा दिया। ये विचार और अनुभव आज भी उतने ही प्रासंगिक हैं। बच्चों की शिक्षा कैसी हो और बच्चों के साथ स्कूल तथा घर में किस तरह से पेश आना चाहिए, इसको लेकर गुजरात के गिजु भाई ने गुलाम भारत में बहुत कुछ कर दिखाया था। गिजु भाई का मानना था कि बच्चा भगवान का रूप होता है और उसके साथ कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करनी चाहिए।

गिजु भाई को बच्चे मूँछों वाली माँ के नाम से जानते थे। उनकी मूँछें झबरीली थीं और वे बच्चों को एक माँ के समान प्यार-दुलार देते थे। 15 नवंबर 1885 को गुजरात के चित्तल, सौराष्ट्र में जन्मे गिजु भाई बच्चों के सही अर्थों में वकील थे। वे बच्चों को दंड देने के सख्त खिलाफ थे। गिजु भाई एक ऐसे शिक्षक थे, जो तमाम अंधविश्वासों, रूढ़ियों और वयस्कों के शिकंजे से बच्चों को मुक्त रखकर शिक्षित करने के पक्षधर थे। वे शिक्षा के सैद्धांतिक पक्षों के साथ ही उनको व्यावहारिक रूप से लागू करने का माद्दा रखते थे। गिजु भाई एक ऐसे विचारशील, प्रयोगनिष्ठ और हिम्मतवाले शिक्षक थे, जो पूरी तरह से बालकों को समर्पित थे।

---

* *पलाश* पत्रिका, अप्रैल-मई 2006 से साभार

गिजु भाई ने गुलाम भारत में गुलामी की मानसिकता को तोड़कर स्वतंत्रता और सृजनशीलता को प्रधानता दी। गिजु भाई शिक्षा के आयातित सिद्धांतों के खिलाफ थे। गिजु भाई मानते थे कि बच्चों को अवलोकन और प्रयोग करने के मौके मिलने चाहिए। दरअसल गिजु भाई की साधारणता में ही असाधारणता झलकती है। गिजु भाई मानते थे, कि शिक्षा उबाऊ, एकरस और बेजान नहीं होनी चाहिए।

वकील बनाम शिक्षक

गिजु भाई एक वकील थे। दरअसल गिजु भाई ने वकालत का पेशा छोड़कर शिक्षा के इस पुनीत काम से अपने-आपको जोड़ा। गिजु भाई के पिता शिक्षक का पेशा छोड़कर वकील बने थे और गिजु भाई वकील का पेशा छोड़कर शिक्षक बने। यह सवाल उठना स्वाभाविक ही है कि एक वकील को क्या पड़ी थी कि वह अपनी वकालत छोड़कर शिक्षा के क्षेत्र में जीवन को झोंक दे, क्योंकि उस ज़माने में स्कूल खोलना या शिक्षा के क्षेत्र में काम करना कोई मुनाफ़े का सौदा तो था नहीं । इसके पीछे जो कारण थे, वे ये थे कि उन्होंने जो शिक्षा पाई थी और उनके साथ जो अमानवीय सलूक हुआ था, उसका उनके ज़ेहन पर काफ़ी प्रभाव हुआ था। दूसरा यह कि उनके यहाँ बेटे का जन्म हुआ। गिजु भाई नहीं चाहते थे, कि उनके बेटे के साथ भी वही व्यवहार हो, जो उनके साथ हुआ था। सन् 1920 से 1936 तक ढाई साल से छह साल तक के बच्चों के बीच आपने बाल मंदिर में शिक्षक के रूप में काम किया। गिजु भाई ने जो कहा, वह करके बता दिया और कथनी एवं करनी की खाई को पाट कर एक मिसाल कायम की। गिजु भाई ने भावनगर में एक स्कूल खोला। इस स्कूल की आधारभूत रचना बच्चों के हिसाब से तैयार की गई। मसलन बच्चे के कद के हिसाब से कक्षा में फर्नीचर और पानी पीने की व्यवस्था या ब्लैक बोर्ड या कमरे में हवादान, जबकि आज जो स्कूल बनाए जाते हैं, उनमें बच्चों की कद-काठी का कोई ध्यान नहीं रखा जाता है। इतना ही नहीं, उनके स्कूल में बच्चे को पूरी छूट होती कि वह पढ़ना चाहता है या सोना या खेलना। भावनगर में गिजु भाई की याद में चलाए जा रहे दक्षिणामूर्ति स्कूल में आज भी इन सब बातों का ध्यान रखा जाता है।

शिक्षा के क्षेत्र में जो तीन बड़े और गंभीर सवाल हैं, वे हैं- क्या पढ़ाना? किसलिए पढ़ाना? और कैसे पढ़ाना? यदि इन सवालों के जवाब खोज लिए जाएँ, तो उपयोगी और ठोस शिक्षा की रचना की जा सकती है। शिक्षा से जुड़ी किसी भी योजना में इन तीनों बातों का समान रूप से ध्यान रखा जाए और तीनों के बीच तालमेल हो, तो शिक्षा को बेहतर बनाया जा सकता है।

गिजु भाई के शिक्षा के सिद्धांत स्वतंत्रता, आत्मनिर्भरता, सृजनशीलता और स्वानुशासन की बुनियाद पर टिके हैं। गिजु भाई चाहते थे कि परंपरावादी त्रासदी, बालविरोधी, अध्यापक केंद्रित पद्धति के विपरीत प्रेम-प्यार पर आधारित नए शिक्षण का सूत्रपात किया जाए, जिसके केंद्र में बच्चे हों।

प्रकृति का शिक्षण

गिजु भाई का मानना था कि प्रकृति की शिक्षा धैर्य और भरोसे की पोषक होती है। ज़मीन में बीजों को बोने की क्रिया से लेकर जब तक उसका अंकुर नहीं फूटता, उस पर धीमे-धीमे डालियाँ और पत्ते नहीं आते और फिर फूल व फल नहीं आ जाते, तब तक की संपूर्ण क्रिया को निरंतर देखने में बालक की अक्षय श्रद्धा और धैर्य की पूर्ण शिक्षा समाहित रहती है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों बेशक यही होगा - इस तरह प्रतीक्षा करने में ही श्रद्धा का बल समाया हुआ है। यही बालक पौधों और जंतुओं के विकास के अवलोकन द्वारा धैर्य रखने की सीख लेता है। जो धीरज और विश्वास शास्त्र सुनने या पढ़ने से पैदा नहीं होता, वह प्रकृति के अध्ययन से उत्पन्न होता है। यदि हम यह समझ लें कि प्रकृति में शिक्षा देने की अद्‌भुत शक्ति है, तो प्रकृति का शिक्षण प्राप्त करने का प्रबंध करना कोई कठिन काम नहीं है। विद्यालय बालकों के शारीरिक विकास के लिए बड़े-बड़े मैदान और अखाड़े भले ही न जुटाएँ, परंतु खेती और जीवों के अध्ययन के लिए थोड़ी ज़मीन तो जुटाई ही जा सकती है।

गिजु भाई कहते हैं कि बच्चों को घर से लेकर स्कूल तक हर कहीं मार खानी पड़ती है। पीटने के अनेक तरीके स्कूल में प्रचलित होते हैं। घूँसा मारना, तमाचा मारना, चिमटियाँ लेना, स्केल से पीटना ये सब आम तरीके हैं। इन तरीकों के अलावा बच्चों को पीटने में कुछ नवाचार किए जाते हैं। जैसे - टेबल पर बच्चे का हाथ रखकर स्केल से पीटना आदि। शिक्षा का मतलब जानकारी! जानकारी!! जानकारी बस!!!

ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान !! गिजु भाई कहते हैं कि इतिहास की घटनाएँ बच्चों को सालवार याद रहती हैं, कविता और उसके अर्थ भी याद होते हैं। और भी काफ़ी कुछ रटा हुआ याद होता है। लेकिन इनमें विकास नदारद होता है। स्कूल शिक्षण की प्रयोगभूमि नहीं होती है। वह खेल का मैदान भी नहीं है। वह नाट्यशाला नहीं होती है और संग्रहालय भी नहीं है। वह बगीचा भी नहीं होता है। स्कूल का मतलब यह होता है कि चार दीवारें, गंदा-सा कमरा और उसमें बच्चों के हाथ में नीरस पाठ्यपुस्तकें और डंडा लिए हुए शिक्षक।

ऐसे कितने ही अनुभवों की चर्चा करते हुए गिजु भाई बच्चों के साथ घर में होने वाले अत्याचारों की बात भी करते हैं। गिजु भाई कहते हैं कि हम जब छोटे थे, तब घर बड़ों का था और हम उसमें समाए हुए थे। बड़ों की बड़ी-बड़ी रुचियों में हमको जीना पड़ता था। बड़ों के बोलते समय हमको चुप रहना होता था। मेहमानों के सामने हमको अदब के साथ खड़े होना पड़ता था और उनको सुनाने के लिए उनकी पसंद की कविता रटनी पड़ती थी। गिजु भाई आगे कहते हैं, कि अपने बचपन में कदम-कदम पर यह महसूस होता था कि हम बच्चे हैं और अपने माता-पिता के घर के खिलौने हैं। माता-पिता खुश होने के लिए अपनी पसंद के कपड़े बच्चों को पहनाते हैं। अपनी मौज़मस्ती के लिए ही वे अपनी इच्छानुसार बच्चों को खिलाते हैं, घुमाते हैं। मेहमानों के

आने पर वे हमको सम्मान देते हैं। बाहर घुमाने-फिराने ले जाते समय भी बच्चों को इसलिए सजाते-सँवारते हैं कि कहीं उनको शरमाना न पड़े। घर में अच्छी चीज़ें बस इसलिए जुटाई जाती हैं कि वे यह जता सकें कि मेरे घर में फलाँ के यहाँ से ज़्यादा खिलौने हैं।

गिजु भाई मानते थे कि विकास का मतलब मात्र यह नहीं है कि बच्चा बड़ा होकर पैसा कमाए; बल्कि ऐसा विकास हो, जो सकारात्मक हो और समाज के अनुकूल हो। गिजु भाई के ऊपर जितना असर मारिया मोंटेसरी का था, उससे कहीं अधिक असर गांधीजी के विचारों का था। यह समय था, जब आज़ादी की लड़ाई लड़ी जा रही थी। गिजु भाई का मानना था कि मूल्यरहित शिक्षा का कोई महत्त्व नहीं होता। गांधीजी ने आज़ादी की लड़ाई के दौरान जिन मूल्यों को अपनाया था, उनको गिजु भाई ने बच्चों की शिक्षा में शामिल किया था। गिजु भाई के अनुसार शिक्षा यदि आंदोलित नहीं कर सकती, तो उसका समाज के लिए कोई महत्त्व नहीं रह जाता है। वास्तव में गिजु भाई उस दौर में महज़ बच्चों को शिक्षा दे रहे थे, ऐसा नहीं था बल्कि वे भी आज़ादी की लड़ाई में बच्चों को उनके स्तर पर जोड़ने की कोशिश कर रहे थे। तीस के दशक में जब स्वतंत्रता संग्राम अपने पूरे शबाब पर था, तब गिजु भाई अपने बच्चों को बारडोली के सत्याग्रह के आंदोलन में ले गए थे।

माता-पिता के प्रश्न

हमारे समाज में बच्चों को लेकर काफ़ी दिक्कतें आती हैं। गिजु भाई ने कहा कि माता-पिता बनना कठिन है। सच ही है। जब बच्चा इस दुनिया में आता है, वह कई चीज़ों को सीखता है। बच्चे की कई सारी जिज्ञासाएँ होती हैं। जो भी वह देखता है, उसको लेकर बच्चे के मन में सवाल पैदा होते हैं और वयस्कों का समाज है कि उसके सवालों के जवाब देने के बदले उसके सवाल उठाने पर ही रोक लगा देता है। माता-पिता अपने बच्चों से ऊबने लगते हैं और उनकी हर हरकत को एक समस्या के रूप में देखने लगते हैं। माता-पिता परेशान होते हैं, कि बच्चे झूठ का सहारा लेने लगे हैं। बच्चे माता-पिता की बात नहीं सुनते। बच्चे खूब मस्ती करते हैं। बच्चे पढ़ाई नहीं करते। बच्चे खाना नहीं खाते। एक बच्चा दूसरे बच्चे को मारता है। बच्चा माता-पिता की मर्ज़ी के कपड़े नहीं पहनता। बच्चा मिट्टी खाता है। ऐसे तमाम सवालों और समस्याओं के संबंध में गिजु भाई से अभिभावक बातचीत करते थे और अपनी समस्याओं का समाधान करते थे।

गिजु भाई ने बच्चों की शिक्षा में उन प्रक्रियाओं को तव्वजो दी, जो बच्चे के विकास को गति दे सकें। वे बच्चों के सतत् अध्ययन, अवलोकन और उनसे बातचीत के हमेशा हिमायती रहे। दरअसल गिजु भाई का मानना था कि बच्चों को बेहतर इंसान बनाने की प्रकियाएँ स्कूल या घर के माध्यम से होनी चाहिएँ।

अनुभवों का विशाल साहित्य

यदि हमारे देश का शैक्षिक इतिहास उठाकर देखें तो पता चलता है, कि पहले बच्चों की शिक्षा पर लेख कम ही लिखे जाते थे; लेकिन गिजु भाई ने बच्चों की शिक्षा और उनकी

समस्याओं को लेकर उनके साथ कैसे संवाद करें आदि विषयों पर कोई एक दर्ज़न से भी ज़्यादा किताबें लिखी हैं। गिजु भाई ने बच्चों के साथ जो समय बिताया और उन्हें जो अनुभव हुए, उन सबका संकलन है इन किताबों में। वास्तव में गिजु भाई की किताबों का सेट तो हमारे देश के हर स्कूल में होना चाहिए।

गिजु भाई के द्वारा लिखित पुस्तकें -

1 माता-पिता से
2 माँ-बाप बनना कठिन है
3 माँ-बापों की माथापच्ची
4 मॉण्टेसरी पद्धति
5 बाल शिक्षण, जैसा मैं समझ पाया
6 प्राथमिक शाला में शिक्षा पद्धतियाँ
7 प्राथमिक शाला के शिक्षक
8 प्राथमिक शाला में भाषा शिक्षा
9 प्राथमिक शाला में चिट्ठी वाचन
10 प्राथमिक शाला में कला-कारीगरी की शिक्षा
11 दिवास्वप्न
12 शिक्षक हों, तो
13 चलते-फिरते
14 कथा-कहानी का शास्त्र, भाग1 और 2

इनमें मॉण्टेसरी पद्धति, दिवास्वप्न और कथा कहानी का शास्त्र - ये तीन पुस्तकें अपनी विलक्षणता और मौलिकता के कारण शिक्षा जगत् के लिए अमर देन हैं। वास्तव में ये किताबें बच्चों को और उनके मन को समझने में बड़ों की काफ़ी मदद करती हैं।

***

प्रस्तुत लेख में लेखक ने करोड़ों गरीब भारतीयों की विशेष शैक्षिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, पाठशालाओं को शैक्षिक कार्यशालाओं (Educational Industries) में बदलने की योजना प्रस्तुत की है। लेखक का दृढ़ विश्वास है कि जब तक शिक्षा गरीब समुदाय की तात्कालिक आवश्यकताओं को पूरा नहीं करेगी, तब तक सभी को शिक्षित करने का सपना, सपना ही रहेगा। इस योजना का उद्देश्य पुरानी योजनाओं की आलोचना करना नहीं है बल्कि उनका हाथ पकड़कर, कदमताल करते हुए शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना है और एक स्वावलंबी भारत का निर्माण करना है।

शैक्षिक कार्यशाला – प्रत्यक्ष लाभ के सिद्धांत पर आधारित एक आखिरी समाधान

रूपेंद्र सिंह चौहान*

मेरे विचार उस वर्ग की शिक्षा पर केंद्रित हैं, जो विद्यालय-भवन निर्माण में नींव से छत तक का सहयोग देते हैं पर उनमें कभी पढ़ नहीं पाते। जो विद्यालय जाने वाले रास्तों का निर्माण तो करते हैं, पर उन राहों पर स्कूल-बैग लेकर कभी चल नहीं पाते। जो रोज जिंदा रहने के लिए मरते हैं, पर सही मायनों में कभी जी नहीं पाते।

सर्वप्रथम मैं आप लोगों के सम्मुख एक प्रश्न रखना चाहूँगा कि क्या आप कभी किसी ऐसे व्यक्ति से मिले हैं, जो शिक्षा के महत्त्व, आवश्यकता और उपयोगिता को नकारता हो? जरा सोचकर देखिए। निश्चित रूप से आपका उत्तर 'नहीं' ही होगा। और हो भी क्यों नहीं, प्राचीन काल से शिक्षा को व्यक्तियोपयोगी, समाजोपयोगी, राष्ट्रोपयोगी और इसीलिए आवश्यक समझा जाता रहा है, तो भला कोई व्यक्ति इसकी महत्ता को नकार कैसे सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि शिक्षा के सार्वभौमीकरण के प्रयास का इतिहास, स्वयं इतिहास जितना पुराना है। यह एक अलग बात है कि वैदिक काल में शिक्षा उच्च वर्गों तक ही सीमित रही, परंतु जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गए शूद्रों एवं महिलाओं को शिक्षा का अधिकार मिलता गया और वे भी शिक्षा के समान भागीदार बन गए।

यद्यपि ब्रिटिश कालीन शिक्षा निस्यंदन सिद्धांत पर आधारित थी तथापि अँग्रेज़ों ने शिक्षा के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान दिया। राजाज्ञा अधिनियम (1813), मैकाले विवरण पत्र (1835), वुड घोषणापत्र-(1854), हंटर आयोग (1882), भारतीय विश्वविद्यालय आयोग (1902), 1904 व 1913 की भारतीय शिक्षा नीतियाँ, कलकत्ता

* शोध छात्र, शिक्षा संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

विश्वविद्यालय आयोग (1917), हर्टाग समिति (1929), सार्जेंट योजना इसके प्रमाण है।

आजादी के पश्चात् हमारे संविधान निर्माताओं ने शिक्षा की अनिवार्यता को महसूस करते हुए इसे संविधान में स्थान दिया, जिससे अनिवार्य एवं निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा, मातृभाषा में शिक्षा, पिछड़े वर्गों तथा अनुसूचित जाति व जनजाति की शिक्षा सुनिश्चित हो सके। समय-समय पर राष्ट्र की तात्कालिक आवश्यकताओं को देखते हुए संविधान में संशोधन भी करने पड़े। प्रथम महत्त्वपूर्ण शिक्षा संबंधी संशोधन तब करना पड़ा जब राज्य शिक्षा के निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त नहीं कर पा रहे थे, तब 1976 में शिक्षा को 42वें संशोधन के रूप में समवर्ती सूची में स्थान दिया गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा को जनमानस तक पहुँचाने के लिए अनेकानेक प्रयास किए गए। जैसे राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीतियाँ, राष्ट्रीय साक्षरता मिशन, ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड, मिड डे मील योजना, शिक्षा गारंटी योजना, वैकल्पिक एवं अभिनव शिक्षा, नेबरहुड स्कूल प्लान, सर्वशिक्षा अभियान और भी बहुत कुछ जैसे बालिका शिक्षा कार्यक्रम, चरवाहा विद्यालय (बिहार), कन्या विद्या-धन योजना (यू.पी.) एवं राज्य सरकारों की अनेकों योजनाएँ।

इसके बावजूद -

क्या आपने कभी सोचा है कि हजारों प्रयास करने के बाद, मुफ्त कॉपी-किताब, कपड़े, दोपहर का भोजन देने के बाद भी हम प्रत्येक बच्चे को विद्यालय नहीं ला पाते और अगर ले भी आते हैं, तो साल-छः महीने से ज़्यादा उसे रोक नहीं पाते।

क्या आपने कभी सोचा है कि क्यों हमारे ज़मीन से आसमान (एड्सेट शैक्षिक उपग्रह) तक के प्रयास पूरी तरह सफल नहीं हो पाते।

क्या आपने कभी सोचा है कि जब हर एक व्यक्ति शिक्षा की आवश्यकता समझता है तो फिर गरीब या गरीबी रेखा के नीचे जीने वाले अपने बच्चों को विद्यालय क्यों नहीं भेज पाते?

क्या आपने कभी किसी मूँगफली बेचने वाले या गुब्बारा बेचने वाले से पूछा है कि भइया तुम अपने बच्चे को स्कूल क्यों नहीं भेजते? वो भीगी आँखों से हँसने के सिवाय कोई जवाब नहीं देगा और अगर हम उस पर ज़्यादा दबाव डालकर पूछेंगे तो वह झल्लाकर कहेगा 'कैसे पढ़ाएँ और पढ़कर करेगा भी क्या?'

आप मानिए चाहे मत मानिए आज समाज में दो वर्ग बन चुके हैं। एक तो वह 'है जो पढ़ेगा तो बढ़ेगा' और दूसरा वह है 'जो पढ़ने के चक्कर में पड़ा तो मरेगा।' अगर उस वर्ग ने दिन में मेहनत मज़दूरी करने के बजाय स्कूल की राह पकड़ी तो समझ लीजिए उसके जीवन के अस्तित्व पर ही प्रश्न चिह्न लग जाएगा। वह गरीब, कुपोषण और भूखमरी का शिकार होकर अंततः मर जाएगा।

क्या आपको नहीं लगता कि हमारी शिक्षा संबंधी नीतियों में ही कुछ कमियाँ है? जिसकी वजह से हम शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लक्ष्य को अब तक प्राप्त नहीं कर पाये हैं।

हम भूल वहीं कर जाते हैं जब हम सबके लिए एक समान शिक्षा की नीति लागू करते हैं। जब हम गहराई से चिंतन करेंगे तो पाएँगे कि हमारे उस विशिष्ट वर्ग की आश्यकताएँ भिन्न

हैं अत: समाधान भी भिन्न होना चाहिए। उसकी समस्या दोपहर का खाना (Mid-day meal) मात्र ही नहीं है, बल्कि उससे कहीं बढ़कर है। हमें उस वर्ग की समस्याओं को संगठित करके उसका शिक्षा के माध्यम से एक उत्कृष्ट समाधान देना होगा। उस वर्ग की मूल समस्या उसकी गरीबी और बेकारी है। हमें इन समस्याओं से शिक्षाशास्त्र से नहीं बल्कि शिक्षाशस्त्र से लड़ना होगा और अपनी पाठशालाओं (Educational Institutes) को कार्यशालाओं (Educational Industries) में बदलना होगा, तब कहीं जाकर हम शिक्षा के माध्यम से गरीबी, बेकारी और अशिक्षा जैसे दानवों को मार सकेंगे।

योजना की रूपरेखा -

(अ) हमें सर्वप्रथम ऐसे कामों की सूची बनानी होगी जिसे स्कूलों में बच्चों द्वारा, पढ़ाई के साथ-साथ प्रतिदिन निश्चित समय देकर पूरा किया जा सके। इसके लिए कुछ उदाहरण मैं यहाँ रखना उचित समझता हूँ। अन्य कामों का चयन विद्यालय अपनी विशेष सहूलियतों के अनुसार कर सकता है -

1. मशरूम की खेती- इसे काफी सीमित स्थान पर सीमित संसाधनों के माध्यम से सीमित समय में किया जा सकता है।
2. स्कूल की अपनी नर्सरी बनाना- जिसमें तरह-तरह के पौधों को बाज़ार हेतु विकसित किया जाएगा।
3. स्कूल की ज़मीन में फल, सब्जी आदि का उत्पादन करना।
4. चिप्स, पापड़, नमकीन आदि बनाना।
5. आचार बनाना।
6. दालों की सफाई एवं पैंकिग करना।
7. सत्तू उद्योग।
8. आटा उद्योग।
9. मिट्टी के बर्तन, दीया, सुराही, घड़ा, खिलौने, गमले आदि बनाना।
10. डलिया, सूप एवं चटाई बनाना।
11. पत्तल, दौने आदि बनाना।
12. मोमबत्ती बनाना।
13. लिफाफा एवं फाइल बनाना।
14. पुस्तकों की जिल्दसाज़ी करना।
15. सिलाई-कढ़ाई के काम करना।
16. कागज़ की थैलियाँ बनाना।
17. रस्सी बनाना।
18. सूत के काम करना।

(ब) योजना के दूसरे चरण के अंतर्गत हमें एक क्षेत्र (Block) के गरीब एवं कुशल कारीगरों को अपनी योजना में शामिल करना होगा ताकि वे घूम-घूम कर अपने ब्लॉक के सभी विद्यालयों में अपने हुनर को फैला सकें। इससे वे स्वयं भी लाभान्वित होगें और समाज भी और लुप्त होती कलाओं को भी सहारा मिलेगा।

(स) योजना के तीसरे चरण के अंतर्गत हम सरकारी अथवा गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से, एक क्षेत्र के सभी विद्यालयों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को एकत्रित करेंगे और उसे उचित मूल्य पर बाज़ार में बेच देंगे। इस कार्य के लिए हम, क्षेत्र के अत्यंत गरीब व्यक्तियों की सहायता लेंगे और उन्हें भी अर्थ लाभ दिलाकर, उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति को मज़बूत कर सकेंगे।

(द) योजना के चौथे एवं अंतिम चरण के अंतर्गत हम यह धन पाठशालाओं (कार्यशालाओं)

के माध्यम से गरीब बच्चों एवं इस योजना में सम्मिलित प्रत्येक ज़रूरतमंद व्यक्ति तक पहुँचाएँगे।

यह प्रत्यक्ष धन प्रत्येक अभिभावक को प्रेरित करेगा और वे अपने बच्चों को इन नवीन कार्यशालाओं में भेजने लगेंगे यहीं शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए आखिरी समाधान हो सकता है, जिसकी सफलता पर मुझे कोई संदेह नहीं है।

इन कामों के लिए सरकार को विशेष रियायतें एवं संरक्षण प्रदान करना होगा, ताकि ये कार्यशालाएँ (Education Industries) समाज में अपनी जड़ें जमा सकें।

शैक्षिक कार्यशाला (Educational Industry) की आवश्यकता क्यों :-

इस योजना के पीछे मेरा ऐसा मकसद बिल्कुल भी नहीं है कि मैं योजनाओं की कतार में एक और योजना खड़ी कर दूँ। बल्कि मेरा मकसद इस योजना के माध्यम से विशेष वर्ग के लिए विशेष शिक्षा की व्यवस्था करना है। जिससे भारत का वर्तमान सुदृढ़ एवं भविष्य उज्ज्वल बन सकें।

इस योजना की आवश्यकता को अनायास ही मैंने महसूस नहीं किया है बल्कि इसके पीछे अनेक कारण है :-

1. पहली पंचवर्षीय योजना में हमने शिक्षा के लिए 153 करोड़ रु. निर्धारित किए और उस समय हमारी साक्षरता तकरीबन 20 प्रतिशत थी। नौवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002) में हमने शिक्षा पर 22096 करोड़ व्यय किये जो कि पहली पंचवर्षीय योजना की धनराशि की 145 गुनी थी फिर भी हम साक्षरता को पाँच गुना नहीं बढ़ा पाए हैं। अर्थात् हमारे प्रयासों में दिशाहीनता थी।
2. आज हमारे देश में 10 लाख से अधिक प्राथमिक विद्यालय हैं और प्राथमिक विद्यालय आयु-वर्ग के बच्चों की संख्या लगभग 15 करोड़ है। अगर ये सब बच्चे स्कूल जाएँ तो प्रत्येक विद्यालय में छात्र संख्या लगभग 150 होगी। अर्थात् प्रत्येक कक्षा में लगभग 30 बच्चे। फिर भी आज 3 करोड़ बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं।
3. एक ओर, एक आँकड़ा कह रहा है कि पिछले तीन दशकों से हमारी राष्ट्रीय साक्षरता दर लगभग 25 प्रतिशत प्रति दशक बढ़ रही है। तो निश्चित रूप से अगले दशक में हमारी साक्षरता 82 प्रतिशत होगी। और उसके अगले दशक में भारत पूर्ण साक्षर होगा। पर चूंकि 10वीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा पर व्यय पिछली से लगभग दोगुना किया गया था और 11वीं पंचवर्षीय योजना तो शिक्षा के लिए वरदान है। अतः आंकड़ों के अनुसार लक्ष्य और शीघ्र प्राप्त होगा। पर साथ ही साथ हमें यह भी देखना चाहिए कि केरल (साक्षरता 90.92 प्रतिशत), मिज़ोरम, लक्ष्यद्वीप, गोवा, दिल्ली, पांडिचेरी, चंडीगढ़, जहाँ साक्षरता 80 प्रतिशत से अधिक है, आदि में साक्षरता का प्रतिशत पिछली जनगणना (1991) के समय भी तकरीबन उतना ही था जितना कि 2001 की जनगणना के समय रहा। हम यहाँ पर साक्षरता के क्षेत्र में आगे क्यों नहीं बढ़ पा

रहे हैं। यहाँ पर क्यों साक्षरता का पहिया अशिक्षा के दलदल में धँस गया है और आगे बढ़ ही नहीं पा रहा है।

4. आज बहुत से प्राथमिक विद्यालयों की स्थिति ऐसी है, कि विद्यालय की दीवारों पर महिलाएँ गोबर के कंडे पाथती हैं, विद्यालय के कमरों में प्रधानजी के मवेशी जुगाली करते रहते हैं अगर एक-आध कमरा बचता है तो उसमें हेडमास्टर साहब के जानवरों का भूसा भरा रहता है और विद्यालय प्रांगण में बच्चे बकरी की छेरों से कंचे खेलते रहते हैं। आखिर समाज में शिक्षा के प्रति यह उदासीनता क्यों उत्पन्न हो रही है?

हाँलांकि मुझे तात्कालिक शिक्षा नीतियों से शिक्षा के सार्वभौमीकरण का लक्ष्य प्राप्त होता नहीं दिखाई देता परंतु यदि एक पल के लिए मान ही लिया जाए कि किसी तरह हम सभी को शिक्षित करने में सफल हो भी गए, तो क्या तीर मार लेंगे। क्या उस समय स्टेशन पर भीख माँगता शिक्षित भिखारी हमसे यह नहीं पूछेगा कि बताओ अब हम क्या करें?

आज जब साक्षरता लगभग 65 प्रतिशत है तो बेरोज़गारी का यह हाल है और कल को जब पूरा देश साक्षर होगा तब की बेरोज़गारी के बारे में क्या आपने विचार किया है? तब सामाजिक ताने-बाने के छिन्न-भिन्न होने की संभावनाएँ बढ़ जाएँगी। इसलिए हमें शिक्षा के साथ रोज़गार को तो जोड़ना ही होगा ताकि सामाजिक समरसता, भाईचारा एवं एकता बनी रहे। इन्हीं सब बिंदुओं ने मुझे शैक्षिक कार्यशाला (Educational Industry) की अवधारणा के विषय में सोचने हेतु भूमि प्रदान की।

योजना के लाभ -

1. दम तोड़ते हुए लघु-उद्योगों एवं ग्रामोद्योगों को यह योजना संजीवनी की भाँति जीवन-दान देगी।
2. यह योजना गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन करने वालों की स्थिति में सुधार लाएगी।
3. यह योजना कुशल कारीगरों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाएगी।
4. आने वाली पीढ़ियों को आत्मनिर्भर बनाने में यह योजना मददगार साबित होगी।
5. इस योजना के माध्यम से समाज में एकता एवं समरसता बढ़ेगी।
6. यह योजना गरीबी, बेरोज़गारी एवं अशिक्षा जैसे सामाजिक बीमारियों के लिए रामबाण औषधि होगी।

योजना की सीमा

इस योजना की सबसे बड़ी खामी, जो मुझे दिखाई दे रही है, वो यह है कि कहीं इन कार्यशालाओं (Educational Industries) में नियमों की आड़ में बच्चों का शोषण न होने लगे और उनसे उनका बचपन ही न छिन जाए।

अत: हमें काम करने के थोड़े और निश्चित समय का कठोरता से पालन करना होगा ताकि यह योजना अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सके।

अंत में मैं यही कहना चाहूँगा कि शैक्षिक कार्यशाला (Educational Industries) की अवधारणा को सार्थक करने के लिए विद्यालयों के साथ-साथ समाज, सरकार एवं गैर-सरकारी

संगठनों को मिलकर काम करना होगा, तभी हमारा भारत सुखी एवं समृद्धशाली बनेगा।

संदर्भ सूची

1. नंदा जे., ***एजुकेशन फॉर आल,*** नयी दिल्ली, एपीएच पब्लिशिंग कार्पोरेशन, 2007
2. मेहता ए.सी., ***एलीमेंटरी एजुकेशन इन इंडिया, स्टेट रिपोर्ट कार्ड्स,*** नयी दिल्ली, मानव संसाधान विकास मंत्रालय, नेपा, 2005-06
3. झा जे. झिंगन डी, ***एलीमेंटरी एजुकेशन फॉर द पूअरेस्ट एंड अदर डिप्राइव्ड ग्रुप्स, द रीयल चैलेंज ऑफ यूनिवर्सलाइज़ेशन,*** नयी दिल्ली, मनोहर पब्लिकेशन, 2005
4. गुप्ता एस.पी., ***भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ,*** इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, 2004
5. ***इंडिया ए रेफरेंस एनुअल,*** नयी दिल्ली, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार (2003, 1993, 1985, 1974)
6. ***सर्वशिक्षा अभियान, ए प्रोग्राम फार यूनीवर्सल एलीमेंटरी एजूकेशन,*** नयी दिल्ली, मानव संसाधान विकास मंत्रालय, 2002
7. कुमारी बी.वी., राव डी.बी., ***आपरेशन ब्लैकबोर्ड,*** नयी दिल्ली, एपीएच पब्लिशिंग कार्पोरेशन, 1996

***

शिक्षक द्वारा दिया गया थोड़ा-सा समय, प्यार से की गई बातचीत, स्नेहिल स्पर्श, बच्चे पर किया गया भरोसा बच्चे की अंतर्निहित प्रतिभा को तो उजागर करता ही है उसे स्कूल में बनाए रखने में भी सहायक होता है। अपने किसी भी कार्य पर अन्य लोगों से मिली सराहना बच्चे को आत्मविश्वास से भर देती है और फिर पाठ्येतर क्रियाकलाप ही नहीं बल्कि पढ़ने-लिखने में भी बच्चे का मन लगने लगता है। यह लेख एक शिक्षक द्वारा बच्चे की प्रतिभा की पहचान कर उसे सफलता के डगर पर ले जाने की सच्ची घटना पर आधारित है।

महेंद्र पास हो गया!

कृष्ण कुमार शुक्ल*

उत्तराखंड के पौड़ी गढ़वाल जनपद में समुद्र तल से लगभग 6000 फुट की ऊँचाई पर एक स्थान है 'मुंडनेश्वर' जहाँ 'खैरालिंग महादेव' का विश्वप्रसिद्ध मंदिर स्थित है। यहाँ एक राजकीय इंटर कॉलेज तथा दो-तीन दुकानों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। संयोगवश इस विद्यालय में मुझे प्रवक्ता एवं प्रभारी प्रधानाचार्य के रूप में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। यहाँ पास में एक गाँव 'सकनोली' है, जिसमें एक अत्यंत गरीब परिवार में महेंद्र नामक बालक पैदा हुआ था। गाँव के अन्य बच्चों की भाँति महेंद्र भी प्रारंभ में निकट के प्राथमिक स्कूल में पढ़ने गया किंतु कई बार विभिन्न कक्षाओं में फेल होने के कारण अंततः वह स्कूल से बाहर हो गया था। महेंद्र अब गाय और बकरियाँ चराता था। चूँकि इस स्थान पर पानी का अभाव रहता था, इसलिए कुछ गुरुजन ऐसे बच्चों से सुदूर जंगल में स्थित प्राकृतिक स्रोत (झरना) से पानी मँगाया करते थे। महेंद्र भी उनमें से एक था। पानी मँगाने के बदले लोग उसे एक-दो रुपये दे दिया करते थे, जिससे वह टॉफी, बिस्कुट आदि ले लेता था।

समय अपनी स्वाभाविक गति से व्यतीत हो रहा था। मैं खैरालिंग महादेव के मंदिर में प्रायः अपने साथी अध्यापकों के साथ भ्रमण पर जाया करता था। एक दिन की बात है, मैं मंदिर परिसर में स्थित 'यात्री विश्राम स्थल' में बैठा प्रकृति के नज़ारे देख रहा था, कि मेरे कानों में गढ़वाली लोकगीत की सुमधुर ध्वनि सुनाई पड़ी। मैंने अपने साथियों से उत्सुकतापूर्वक पूछा कि 'इस निर्जन स्थान पर कौन इतनी मीठी धुन में गीत गा रहा है?' एक अध्यापक ने बताया कि यह आवाज़ तो 'महेंद्र' की जान पड़ती है।

* शोध अधिकारी, एस.सी.ई.आर.टी., उत्तराखंड, नरेंद्र नगर, टिहरी, गढ़वाल

उसके पास जानवर चराने और गीत गाने के सिवाय और कोई काम नहीं है। पढ़ाई-लिखाई तो उसने छोड़ ही रखी है।

अब तक मैं महेंद्र से अपरिचित था। मेरा मन और हृदय महेंद्र को निकट से जानने और समझने के लिए बेचैन हो उठा। मेरा मन स्वयं से प्रश्न करने लगा कि जो बच्चा लोकगीत को इतनी मधुर ध्वनि में गा सकता है, वह आखिर प्राथमिक स्तर में कई बार फेल कैसे हो सकता है? ऐसी कौन सी परिस्थितियाँ हैं, जिनके नाते महेंद्र में ऐसा कोई गुण नहीं है, जो उसे समाज में एक सम्मानित नागरिक के रूप में पहचान दिला सके? क्या महेंद्र के जीवन की परिणति एक चरवाहे के रूप में होगी? क्या महेंद्र को पुनः स्कूल से नहीं जोड़ा जा सकता है? ऐसे नाना प्रकार के प्रश्नों से मैं व्यथित हो उठा।

अगले दिन मैंने प्राथमिक विद्यालय के प्रधानाध्यापक से संपर्क किया तथा महेंद्र के बारे में जानकारी प्राप्त की। प्रधानाध्यापक ने बताया कि महेंद्र कक्षा 4 में लगातार दो बार फेल होने के फलस्वरूप स्कूल छोड़ चुका है। उसे ठीक से लिखना-पढ़ना तक नहीं आता है। अब तो उसे बस जानवर ही चराना है। मैंने जब प्रधानाध्यापक से यह पूछा कि उनके द्वारा महेंद्र की सफलता के लिए क्या प्रयास किया गया? तो उन्होंने बताया कि 'मैंने उसके पिता से शिकायत की तो वे उलटे मुझसे लड़ने लगे। सुधार हेतु कई बार पिटाई भी की किंतु उसमें कोई सुधार नहीं हुआ। इस प्रकार धीरे-धीरे महेंद्र की पढ़ाई से अरुचि हो गई तथा कक्षा 4 में वह स्कूल से बाहर हो गया।

मैं एक क्षण के लिए इस चिंतन में डूब गया कि महेंद्र को अब शिक्षा की मुख्य धारा से पुनः कैसे जोड़ा जाए, तथा उसमें निहित नैसर्गिक प्रतिभा का प्रकाशन कैसे कराया जाए? मैंने उसी क्षण यह संकल्प लिया कि महेंद्र को अन्य बच्चों की भाँति एक प्रतिभावान छात्र बनाना है; ताकि आगे चलकर वह एक सम्मानजनक जीवन जी सके। अपने इसी संकल्प को ध्यान में रखकर मैंने कुछ बच्चों को भेजकर उसे अपने आवास पर बुलवाया। सबसे पहले मैंने उससे उसका नाम पूछा। फिर उसके साथ मौजूद अन्य बच्चों का नाम पूछा। उसके पिताजी तथा परिवार के बारे में जानकारी ली। मैंने यह भी पूछा कि 'क्या तुम मेरे लिए भी पानी ला सकते हो?' महेंद्र ने 'हाँ' कहा। मैंने जानबूझकर मित्रवत् वार्तालाप करते हुए कहा कि 'परसों कोई बहुत अच्छा गढ़वाली गीत मंदिर के पास गा रहा था। महेंद्र क्या गीत गाने वाले तुम थे?' पहले तो वह चुप रहा किंतु बार-बार कुरेदने पर उसने शरमाते हुए कहा कि 'नहीं गुरुजी, मुझे गाना नहीं आता है।' मैंने उससे फिर कहा कि 'परसों मंदिर के पास गाने की आवाज़ तो तुम्हारी ही लग रही थी। बोलो 'ऐसा रे भनुमती पाबौ बजारा' नामक गढ़वाली गीत तुम नहीं गा रहे थे? मैंने उसे अपने और अधिक करीब लाने के लिए उसी गीत को अपने स्वर में गुनगुनाया। पहले तो वह चुप था, किंतु वार्तालाप करते-करते उसमें यह साहस उत्पन्न हो गया था कि वह मेरे द्वारा गाए गए गीत में कई कमियाँ बताने लगा। मुझे अपने उद्देश्य की सफलता के अंकुर निकलते हुए दिखाई देने लगे।

मैंने महेंद्र से पूछा कि 'बेटा तुम इस गीत को अपनी गढ़वाली धुन में कैसे गाते हो?' अन्य बच्चों ने भी उसका उत्साह बढ़ाया। बच्चों ने बताया कि महेंद्र गीत बहुत अच्छा गाता है। फिर क्या था! मेरे पुनः आग्रह करने पर महेंद्र ने गीत गाना शुरू ही कर दिया। मैंने महेंद्र को शाबासी दी तथा इनाम स्वरूप 10/- रुपये की नोट देते हुए कहा कि 'उसके सहित इस समय यहाँ कुल कितने बच्चे हैं?' महेंद्र ने उत्सुकतापूर्वक गिनकर बताया कि 'गुरुजी पाँच बच्चे हैं।' मैंने कहा कि 'जाओ टॉफियाँ लेकर आओ। महेंद्र कुल 20 टॉफियाँ लेकर आया। मैंने उसे बच्चों में बराबर-बराबर बाँटने के लिए कहा। एक-एक करके चार बार में उसने टॉफियाँ बाँट दी। मैंने पूछा कि 'अब तुम्हारे पास कितनी टॉफियाँ बची हैं?' उसने तुरंत उत्तर दिया 'गुरुजी चार'। मुझे विश्वास हो गया कि महेंद्र फिर से स्कूल में जाएगा और पढ़कर पास होगा, क्योंकि प्रयोग के इस चरण तक मैं अपने उद्देश्य में सफल रहा। अब महेंद्र प्रतिदिन मुझसे मिलने लगा। संयोगवश 15 अगस्त- 'स्वतंत्रता दिवस' दो दिन बाद मनाया जाने वाला था। स्कूलों में बच्चे सांस्कृतिक कार्यक्रम तैयार कर रहे थे। पहाड़ों में प्रायः आस-पास के सभी स्कूल एक ही सुविधाजनक स्थान पर सम्मिलित रूप से कार्यक्रमों का आयोजन करते हैं।

मैंने महेंद्र को विशेष आमंत्रित के रूप में लोकगीत प्रस्तुत करने के लिए प्रेरित किया। महेंद्र ने पूरे उत्साह से लोकगीत प्रस्तुत किया। उपस्थित जन समुदाय ने खूब प्रशंसा की। जो महेंद्र लोगों के उपहास और घृणा का पात्र था, वही महेंद्र उस क्षण 'हीरो' की भाँति लोगों के प्यार और सम्मान का पात्र बन गया था। मैंने समारोह में घोषणा की कि महेंद्र कल से स्कूल जाएगा और पढ़ेगा। इसके स्कूल ड्रेस और पुस्तकों की ज़िम्मेदारी मेरी है। स्कूल में अब गलती करने पर भी इसकी पिटाई नहीं होगी। महेंद्र तैयार हो गया। यद्यपि वह कक्षा 4 के अन्य बच्चों से आयु में काफी बड़ा था, तथापि उसे प्रवेश दे दिया गया। स्कूल के अध्यापकों तथा मेरे विशेष प्रोत्साहन के आधार पर महेंद्र का मन अब पढ़ाई में लगने लगा। महेंद्र के अंदर की झिझक अब समाप्त हो गई थी, वह एक जिज्ञासु की भाँति अपनी समस्याओं के समाधान के लिए प्रश्न पूछने लगा।

मैंने प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों से अनुरोध किया कि वे महेंद्र का मूल्यांकन केवल निर्धारित पाठ्यक्रम की जानकारी के आधार पर नहीं बल्कि उसके द्वारा समग्र रूप से किए जा रहे क्रियाकलापों के आधार पर करें। अच्छे कार्यों की सराहना अधिक की जाए तथा बुरे कार्यों की भर्त्सना कम-से-कम की जाए। मुझे प्रसन्नता है, अध्यापकों ने ऐसा ही किया, जिसके फलस्वरूप वर्षपर्यंत अध्ययन के उपरांत महेंद्र कक्षा 4 पास हो गया। यद्यपि उसे अन्य बच्चों के सापेक्ष कम अंक मिले, किंतु उसके स्वयं के जीवन के लिए उसकी यह सफलता घोर अँधेरे में एक दीपक की लौ के समान सिद्ध हुई।

राजकीय इण्टर कॉलेज मुंडनेश्वर में मैं लगभग 5 वर्ष तक रहा। इस बीच महेंद्र भी मिले बिना नहीं रह सकता था। यदा-कदा वह मित्रवत बातें करने लगता। एक दिन वह अपनी

टी.सी. लेकर स्वंय कक्षा 6 में प्रवेश के लिए मेरे पास आया। उसे कक्षा 6 में प्रवेश दे दिया गया। उसकी आयु का उपयोग करने के उद्देश्य से उसे कक्षा का मानीटर भी बना दिया गया। वह अधिक ज़िम्मेदार छात्र बन गया। महेंद्र अब सबसे पहले स्कूल आता। अपनी कक्षा की सफाई अपने सहपाठियों के सहयोग से करता। प्राय: विद्यालय में उपयोग के लिए साथियों के सहयोग से एक-दो बाल्टी पानी लाता। खाली वादन (पीरियड) में ब्लैक बोर्ड पर विभिन्न प्रकार के चित्र बनाता। उन चित्रों पर चर्चा करता। धीरे-धीरे वह वर्ष पर्यंत होने वाली विद्यालयी गतिविधियों में बढ़चढ़कर हिस्सा लेने लगा। उसे देखकर अन्य बच्चे भी प्रेरित होते थे।

एक दिन मैंने महेंद्र से पूछा कि "बेटा तुम्हें अब स्कूल आना अच्छा लगता है, या जब स्कूल से बाहर रहते थे तब अच्छा लगता था?" महेंद्र ने बड़े आत्मविश्वास से उत्तर दिया कि "गुरु जी मुझे स्कूल में आना बहुत अच्छा लगता है।" मेरी आँखे भर आई अपनी इस शानदार सफलता पर। क्योंकि एक बच्चे में विश्वास जगाने में मैं सफल हुआ था। प्रसंगवश यहाँ यह विशेष रूप से उल्लिखित किया जाना समीचीन लगता है कि उत्तराखंड के तत्कालीन शिक्षामंत्री मा. नरेंद्र सिंह भंडारी जी का एक कार्यक्रम मेरे विद्यालय में आयोजित हुआ, जिसमें महेंद्र ने सर्वप्रथम गढ़वाली लोकगीत के माध्यम से मंत्री महोदय तथा उपस्थित जन समुदाय का स्वागत करके मन मोह लिया। महेंद्र अब एक गीत गाने वाला चरवाहा न होकर एक सभ्य, होनहार छात्र के रूप में सबका प्यारा महेंद्र बन चुका था। माननीय मंत्री महोदय ने उसे पुरस्कृत करते हुए उसके उज्जवल भविष्य की कामना की।

मैंने सुना है कि वही महेंद्र अब हाईस्कूल पास करके देहरादून के किसी कंप्यूटर ट्रेनिंग संस्थान में सहायक के रूप में कार्य करके आत्मनिर्भर हो चुका है। अब मैं बड़े गर्व के साथ कह सकता हूँ कि मेरा प्रयोग पूर्ण सफल रहा, क्योंकि 'महेंद्र पास हो गया'।

***

विद्यालय में प्रवेश लेने के बाद बच्चे को विद्यालय में बनाए रखने में विद्यालय और शिक्षक की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। विद्यालय की परिस्थितियाँ बालमन के अनुरूप हों तो बच्चे का विद्यालय में मन रमने लगता है अन्यथा शाला त्यागते देर नहीं लगती। अध्यापक का आत्मीयता पूर्ण व्यवहार भी बच्चे की पढ़ने में रुचि बनाए रख सकता है। कैसा हो विद्यालय का वातावरण? अध्यापक क्या करे? जानने के लिए पढ़िए संस्कृति साहित्य प्रकाशन, दिल्ली द्वारा गिजुभाई ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रकाशित पुस्तक *ऐसे हों शिक्षक* के दो अंश।

हमारे विद्यालय में यह नहीं चलेगा

गिजु भाई बधेका

हमारे विद्यालय में शिक्षाशास्त्र संबंधी पुस्तकों का विशाल पुस्तकालय नहीं होगा तो चलेगा, परंतु माँग-ताँग करके भी अगर शिक्षा संबंधी पुस्तकों से कोई अध्ययन नहीं करेगा तो यह नही चलेगा।

हमारे विद्यालय का भवन आलीशान पत्थरों का बना हुआ या टाइलों से जड़ा हुआ न हो, तो चलेगा; परंतु अगर उसकी ज़मीन में गड्ढे पड़े हुए होंगे या वह गोबर-गारे से लिपा-पुता नहीं होगा, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय की दीवारें रंग-रोगन की हुई और सुंदर नहीं होंगी, तो चलेगा; परंतु अगर उन पर एक भी जाला होगा या धूल चिपकी हुई होगी, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में अच्छे दरी-कालीन बिछे हुए नहीं होंगे, तो चलेगा, परंतु अगर कहीं भी थोड़ा-बहुत कचरा या धूल बिखरी हुई होगी और वह पैरों में आती होगी, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में शिक्षण के ढेर सारे उपकरण नहीं होंगे तो चलेगा, परंतु अगर वहाँ थोड़े-से भी उपकरण हों और वे बिल्कुल काम में नहीं लाए जाएँ, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में बड़ा-सा पुस्तकालय नहीं होगा तो चलेगा, परंतु हाथ से लिखी गई और बालकों द्वारा उत्साह से पढ़ने जैसी पुस्तकें न होंगी, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में हम बड़े भारी पंडित न हों तो चलेगा, परंतु बालकों को सम्मान देने वाले, उनके विकास का अर्थ समझकर उन्हें उत्तम वातावरण देने वाले नहीं होंगे, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में हम पढ़ाने और प्रतिपल छात्रों को विवेकवान बनाने हेतु भाग-दौड़ करने वाले नहीं होंगे तो चलेगा, परंतु अगर हम उनके काम के बीच बाधक बनते होंगे, उन्हें ज़बर्दस्ती पढ़ाने बिठाएँगे, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में बच्चे दो पल पढ़ेंगे और दो पल खेलेंगे तो यह चलेगा, परंतु अगर बच्चे कारखानों के मज़दूरों की तरह दिनभर काम करते ही रहेंगे और हम लोग उन पर सख्त नज़र किए रखेंगे, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय के बालक हमारे गले में आकर न झूमते हों और मित्र बनकर आगे न चलते हों तो चलेगा, परंतु अगर वे हमें देखकर दूर-दूर भागते हों, हमसे डरते हों, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में बच्चे कम पढ़ेंगे तो चलेगा, धीमे-धीमे पढ़ेंगे तब भी चलेगा, परंतु अगर वे चीख-चीखकर पढ़ते-पढ़ते उकता जाएँ और शिथिल हो जाएँ, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में बच्चे अपनी इच्छा से बैठें, मर्ज़ी हो तो पढ़ें और मर्ज़ी हो तो चित्र बनाएँ, यह सब चलेगा, परंतु किसी आंगतुक को दिखाने के लिए अगर वे लिखेंगे, गाएँगे या चित्र बनाएँगे, तो यह नहीं चलेगा।

हमारे विद्यालय में बालकों को कोई काम समझ में नहीं आया और उन्होंने धैर्य के साथ हमें बता दिया या बाद में धीरे-धीरे उसे कर लिया तो यह चलेगा, परंतु डाँट-डपट या मारपीट से वे जल्दी-जल्दी करें, तो यह नहीं चलेगा।

अध्यापक क्या करें?

आप सब लोग चाहे जिस जाति अथवा धर्म के हों, इस बात को गौर किए बिना मैं आप सबको शिक्षक जाति का मानकर संबोधित कर रहा हूँ। मैं भी व्यवसाय से, तथा विचार, व्यवहार और कल्पना से आपकी ही जाति का हूँ। अतएव आप ही की जाति का कोई व्यक्ति आपसे कह रहा है, यही मानकर मेरे निवेदन को कृपापूर्वक सुनिए।

आप देख रहे हैं कि व्यापार में या राजनीति में बहुत सारे लोग संलग्न हैं। नाटक-तमाशे में तो और भी अधिक लोग इकट्ठे हो जाते हैं; परंतु हमारे प्रति सबकी अनाभिरुचि और अनादर होने के कारण हमारी सभा में बहुत कम लोग इकट्ठे होते हैं।

हम लोग जैसे किसी भी काम के न हों, इस तरह का समाज में हमारा स्थान है। 'बेचारे मास्टर' के रूप में हमें देखा जाता है। हमारी सभाओं के समय मोटरें, गाड़ियाँ, कुर्सियाँ या रौब-रुतबेदार लोग नहीं होते, परंतु साधारण अध्यापकगण ही होते हैं। इसका यही कारण है कि आज लोगों की शिक्षा में रुचि नहीं है, जीवन में रुचि नहीं है। जीवन से दूर होने के कारण जनसमाज को हमारी ज़रूरत नहीं है।

हालांकि मेरे कुछेक स्वप्न आपको पागलपन-से प्रतीत होंगे, परंतु मुझे विश्वास है कि भले ही हज़ार वर्षों के बाद, एक दिन ऐसा अवश्य आएगा कि जब शिक्षाविद् बाज़ार से गुज़रेंगे तो लोग उन्हें सम्मान से देखेंगे, उनकी सभाओं में उपस्थित होंगे और उन्हें समुचित सम्मान देंगे। लेकिन ऐसा होगा कब? जब लोगों में जीवन जागेगा। जब हम स्वयं उस जीवन से प्रज्वलित हो उठेंगे। अभी तो हमें अपनी स्थिति बहुत ही

साधारण दिखाई देती है। थानेदार का, नगरपालिका का या डाकघर का चपरासी भी बड़ा दिखाई देता है और हम तो 'बेचारे अध्यापक' हैं, ऐसा लगता है। बहुत कम वेतन मिलता है, वह भी खुशामद और कागज़ी कार्रवाई की माथापच्ची के बाद! सचमुच हमारी ऐसी दशा दया के काबिल और शर्म पैदा करने वाली है। इसमें हमारा भी दोष होगा ही। मंत्री और राजा बनाने वाले व्यक्ति की ऐसी दशा नहीं होनी चाहिए। लेकिन हमें हिम्मत हारने की ज़रूरत नहीं है, और न ही हम किसी अन्य व्यवसाय में जाने की बात सोचें।

मुझे लगता है कि देशभर को श्रेष्ठ, प्रतिभा संपन्न, बुद्धिशाली, कमाई करने वाले और बड़े काम करने वाले लोग जब तक इस व्यवसाय में नहीं आएँगे, तब तक हमारी पाठशालाओं की उन्नति नहीं होगी।

डॉक्टरों की जीविका मनुष्य जीवन की निष्फलता पर निर्भर है। वकील भी समाज के जीवन की निष्फलता पर जीविका चलाते हैं। लोग आरोग्य के नियमों को भंग करते हैं और बीमार पड़ते हैं, या आपस में लड़ते-झगड़ते हैं, मामले-मुकदमे करते हैं, गलत दस्तावेज़ बनाते हैं- इस प्रकार की जीवनगत निष्फलता पर इन लोगों का व्यवसाय चलता है। परंतु हम लोगों का व्यवसाय सर्वश्रेष्ठ है। इतने सर्वोत्तम व्यवसाय में निष्फल रहने का एक ही कारण है कि हम अपने शिक्षण धर्म की उपेक्षा करते हैं। जनसमाज के दोष तलाशने से हमारा काम नहीं चलेगा। हमें तो अपने व्यवसाय के गौरव को समझते हुए उन्नति के लिए अपना योगदान देना है। इसलिए मैं सबसे पहले तो यह बात दिमाग में बिठाना चाहता हूँ कि भले ही हम गरीब हों, सामान्य बुद्धि के या झुककर चलने वाले हों, हमारा स्थान चाहे जहाँ भी हो, लेकिन हमें मिथ्याभिमान से नहीं अपितु निराभिमान बनकर समझना होगा, कि अगर हम संकल्प कर लें, तो संसार को उन्नति के शिखर तक पहुँचा सकते हैं।

किसलिए हमें नम्रता से चलना चाहिए? प्राणिमात्र को अधिकार है कि सच्चा स्वाभिमान रखे। तब भला पुलिस के सिपाही से क्यों डरें? ऊपर वाले अधिकारी की खुशामद क्यों करें? ऐसा सात्त्विक अभिमान तो हममें होना ही चाहिए। अपनी योग्य प्रतिष्ठा को हम बनाए रखें और दासता को दूर करें, इसी में दुनिया की समृद्धि निहित है। आत्मिक बल के समक्ष दुनिया की कोई ताकत नहीं है। महात्माजी इस समय त्याग और आत्मबल के सहारे ही महापुरुष बने हैं।

भले ही हमारे पैरों में जूते न हों, सिर पर साफा न हो और भले ही खाने को न मिलता हो, इसके बावजूद भी अगर हम अपने आत्मिक बल पर व्यवसाय प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करते हैं, तो कोई भी हम से बढ़कर नहीं है।

हम किसी को कोहनी न मारें या कोई असभ्यतापूर्ण व्यवहार न करें, बस अपने तेज को और ज्ञान को दूसरों में भर दें तो हम योग्य शिक्षक कहलाने लगेंगे।

भले ही कोई देखे या न देखे, तब भी हम अपने धर्म का पालन करते हैं। सूर्य और चंद्र सामने साक्षी न हों, तब भी पाप कर्म नहीं

करते, वैसे ही हमें अपने शिक्षक धर्म को लेना है। भले ही हमारे पास पैसे हों या न हों, हमारा मान हो या न हो, अनुकूलता हो या न हो, तब भी हमें इस धर्म का पालन करना है।

जिस तरह से सच्चे नेमधारी ब्राह्मण को कोई देखता हो या न देखता हो, लेकिन वह जूते पहनकर या स्नान किए बिना खाना नहीं खाता, उसी तरह हमें भी अपना परम धर्म निभाना चाहिए। दुनिया देखे या न देखे, लाभ हो या न हो, परंतु सच्चे ब्राह्मण की तरह हम अपने धर्म का पालन करें।

क्या बालक को मार-पीटकर पढ़ाना धर्म है? इस समय देश में जो शिक्षा पद्धति चल रही है, उसे देखकर तो सचमुच शर्मिंदगी हो आती है। हम परिणाम लाने के लिए बँधे हुए हैं, पेट की खातिर अपने धर्म से टिके नहीं रह सकते। कइयों की धारणा है कि मार-पीट करने से ज्ञान आता है और परिणाम भी अच्छा रहता है, परंतु यह अत्यंत भ्रामक धारणा है। इससे कभी कोई लाभ नहीं होने वाला। दंड देने का पापपूर्ण आचरण करने से शिक्षा में ज़रा-सा भी लाभ नहीं होगा। ऐसा करने से बालकों की बुद्धि नहीं बढ़ती है। अगर ऐसा करने से ही बुद्धि बढ़ सकती हो, तो किसी भी बेवकूफ को मार-पीटकर बुद्धिमान बना सकते हैं और हमें भी अपने अब तक के बौद्धिक विकास के लिए मार खानी चाहिए। वस्तुतः यह सोच ही बिल्कुल गलत है। कोई यह तर्क देता है कि सज़ा देकर शैतान लड़कों को शांत बनाया जा सकता है, परंतु यह शांति टिकेगी कब तक? किसी बलवान व्यक्ति के सामने बंदूक ताने रखें, तो वह घड़ी भर के लिए ही शांत रह पाएगा। सज़ा देकर हम बालक को गुलाम बनाना चाहते हैं। यह अच्छी बात नहीं है।

इस समय देश अँधेरे के दौर से गुज़र रहा है, लेकिन हमें अपने बालकों को आने वाले कल के बालक समझना चाहिए। उन्हें अनंत भविष्य का भविष्य मानकर चलना चाहिए। यदि ऐसा करने की बजाय उन्हें दबा-डराकर सवाल मौखिक कराते हैं, तो क्या यह अच्छा समझा जाएगा? मार-पीट करने से तो मार-पीट करने वाले बालक ही पैदा होंगे। वे हमारे सामने नहीं बोलेंगे, परंतु औरों की निर्बलता का लाभ उठाकर वे हमारे जैसे ही बनेंगे।

मैं यह मानकर चलता हूँ, कि बहुत सारे अध्यापक अब भी मार-पीट करते हैं। अगर हममें ताकत है, तो अपने से बड़े के सामने लड़ाई में उसे आजमाएँ या फिर कमज़ोर की रक्षा में उसका प्रयोग करें, परंतु नन्हे बालकों को मारने में कभी न करें। इसमें कोई बहादुरी नहीं है। शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से भी इसमें नीति या समझदारी नहीं है, अपितु नुकसान ही है।

शिक्षण की ऐसी बदी अनेक लोग चलाते हैं। अच्छे पढ़े-लिखे गणमान्य शिक्षक भी इसे नहीं भूल पाए। अगर हमें आगे बढ़ना है, तो इसे बिल्कुल त्यागना होगा। तभी इसका मज़ा आएगा। पहले मैं भी दंड देने में आस्था रखता था, परंतु अब इस संबंध में अपने विचार निश्चित कर चुका हूँ और अब मुझे दंड देने वाले व्यक्ति पर तरस आता है।

आप में से जो लोग सज़ा को छोड़ने के विरुद्ध हैं उन्हें तो क्रोध ही आएगा, परंतु जिन्हें

इससे होने वाली हानि की बात समझ में आ गई, वे तो इसे छोड़ेंगे ही।

हमारी पाठशालाओं में सज़ा देने की ही एक बुराई नहीं है, अपितु बालकों को रटाना, गलत ढंग से पढ़ाना, इनाम या लालच, ऐसी-ऐसी बुराइयों की तो सीमा ही नहीं है। अगर यही सब जारी रहा तो शिक्षण सुधरेगा नहीं, न उस पर प्रकाश ही पड़ेगा।

अब मैं दो-एक सूचनाएँ देने की अनुमति चाहता हूँ। कई बार हम कोई दिशा निर्धारित किए बिना भटकने लगते हैं, अँधेरे में पड़े-पड़े अनेक भूलें करते हैं और अपने व्यवसाय से संबंधित पर्याप्त जानकारी के अभाव में घोटाले करते हैं। मैं आप सबसे सिफारिश करता हूँ कि शिक्षण का सतत् अभ्यास करें। कम वेतन, बच्चों का भरण-पोषण और परंपरागत गरीबी तो हमारे भाग्य से चिपकी हुई ही है, परंतु दुःख के पीछे ही सच्चा सुख छुपा हुआ है। ऐसी स्थिति का लाभ लेना ही चाहिए। गरीबी से कतई न डरें। मैं तो कहता हूँ कि ईश्वर की कृपा है, कि हम सामान्य स्थिति में हैं। साधारण लोग ही उच्च स्थान पर जा सकते हैं। हल्का वर्ग ईश्वर के पास जाने में पहले तैयार होगा। अंत्यज सुधर जाएँ, तो ब्राहाण कौड़ी के बराबर हो जाए। हम तो आचार, विचार, मन, वाणी तथा कर्म से अंत्यज बनते जा रहे हैं।

कंधे पर शानदार दुपट्टा डालकर किसी शोभा यात्रा में हम न जा सकें, इसकी कोई परवाह नहीं। ऐसे मिथ्या मोह में न पड़ते हुए अगर हम अपने मन को स्वस्थ रखकर व्यवसाय को अंगीकार करें और उसके पीछे पागल होकर पड़ जाएँ, तो पैसे हमारे पैरों तले कुचले जाएँगे, ऋद्धि-सिद्धि हमारे यहाँ पानी भरेगी और हम जो भी चाहेंगे, वही मिलेगा- ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है।

हम स्वयं को हल्का न मानें और अपने व्यवसाय को उपासना के स्तर पर लें। शरीर तथा मन की तमाम ताकतों को रोककर हमें यही विचार करना है कि हम अपने काम को अच्छे से अच्छा कैसे करें!

कोई गरीब अपनी रोटी में से आधा हिस्सा दान में दे दे, तो उसका मूल्य किसी राजा के आधे राज्य के समकक्ष आँका जाता है। हमारी साधारण-सी स्थिति में ही अगर हम सच्ची भावना से सेवा करेंगे, तो यह आधी रोटी वाला पुण्य एक महायज्ञ जितना फलदायी बन जाएगा। ऐसा करने पर हमारे व्यवसाय की उन्नति होगी और मरने के बाद भी हमारा कल्याण ही होगा।

ऐसा करने पर ही हमें शिक्षा मंदिर निर्मित करने तथा समग्र जीवन को उज्ज्वल बनाने का पुण्य मिल पाएगा। अपनी गरीबी को देखते हुए भले ही आप ट्यूशन करें या पाठशाला के अन्य काम करें, परंतु वे सब आपके व्यवसाय की महत्ता में वृद्धि करने वाले सिद्ध हों। उनको लेकर परेशान होने की ज़रूरत नहीं है कि 'इस पचड़े में क्यों फँसे?' ऐसा मानकर न किया जाए। अपने व्यवसाय पर आह्लादित और गर्वान्वित रहेंगे, तो हम स्वतः जान जाएँगे कि इसे क्यों कर सुधारा जाए। फिर तो निबंध, व्याकरण और सारी ही बातें समझ में आ जाएँगी। भाषा संबंधी परेशानी फिर नहीं रहेगी।

अब दूसरी बात।

हमारा शिक्षण कर्म और विचार बल तथा संघ बल पर ही टिका रह सकता है और इसी से इसमें वृद्धि हो सकती है। अत: व्यावसायिक उन्नति के लिए सभी कार्यकर्ता शिक्षकों को एक शिक्षक संघ बनाना चाहिए और उसमें चर्चा-परिचर्चाएँ आयोजित करके शैक्षिक विचारों का संवर्द्धन करना चाहिए। वहाँ रोज़ाना जाने की प्रतिज्ञा की जाए, शिक्षण संबंधी पुस्तकें पढ़ी जाएँ और सर्वोत्तम विचारों का विनिमय किया जाए। ऐसा करने पर परिणाम अच्छा ही आएगा।

अच्छा क्या है, यह बात सब जानते हैं, परंतु इस पर बहुत कम परिमाण में आचरण किया जाता है। हमें विभाग का मिथ्या भय नहीं रखना चाहिए। जब हम कोई अभिनव काम करके बताएँगे, तभी विभाग की आँखें खुलेंगी। सामाजिक दु:खों की तरह हमें विभाग की परीक्षा से गुज़रना है। कई लोग सोचते हैं कि 'अब क्या है? थोड़ी रही, बहुत गई। जैसा चलता है, चलने दें।' लेकिन यह धारणा अत्यंत भ्रामक है। जहाँ से समझ में आए, अच्छे काम की शुरुआत वहीं से कर देनी चाहिए। शेष वर्षों को अच्छी तरह से बिताकर जीवन को स्वीकार करें, इसका लेखा पुनर्जन्म में हमें अवश्य मिलेगा।

अगर हम इस तरह अपना वास्तविक धर्म समझेंगे, तो राजा के और बड़े लोगों के पुत्रों को विद्यालय आने की ज़रूरत पड़ेगी। इसी तरह तमाम किलों पर विजय पाई जा सकेगी। तब भला दुनिया कहाँ बचेगी?'

मनुष्यता आएगी तो सभी कुछ आएगा। मुख्य बात है- उत्साह, उद्योग, त्याग भावना और अपने व्यवसाय का गौरव। कुम्हार को भी अपने व्यवसाय पर गहरा गर्व होता है। यह देखकर जब मैं कहीं व्यवसाय की गौरव गरिमा से रहित किसी शिक्षक को देखता हूँ, तो मुझे बड़ी कुढ़न होती है। वांछित अभिमान से स्वयं को पहचानकर ही हम अपने व्यवसाय को उन्नत कर सकते हैं।

हम भी अपने व्यावसायिक मान को रखते हुए स्वयं को पहचान सकें, तो हमारा व्यवसाय अवश्य सुंदर बन सकेगा।

***

बच्चों के लिए कभी-कभी कुछ अवधारणाओं (Concept), को समझना काफ़ी कठिन लगता है। शिक्षक भी समझ नहीं पाते कि उनके द्वारा समझाने पर भी बच्चा क्यों नहीं समझ पा रहा है। बच्चों के लिए कुछ भी समझना मुश्किल नहीं होता यदि उसे खेल ही खेल में सरलता से वह विषय/बात समझा दी जाए। प्रस्तुत कहानी भी ऐसा ही कुछ कहती है।

दिशा*

रमेश उपाध्याय

किसी देश के किसी शहर में एक दिन एक औरत अपने बेटे को स्कूल से मिला हुआ होमवर्क करा रही थी। लड़का किताब पढ़ता जाता था और अपनी माँ से समझ में न आने वाले शब्दों के अर्थ पूछता जाता था। सहसा उसने पूछा, 'माँ, दिशा क्या होती है?'

'दिशा? यह शब्द इस पाठ में कहाँ आया है?'

'इस पाठ में नहीं है। विज्ञान की किताब में है। हमारी साइंस टीचर ने आज उसमें से दिशा वाला पाठ पढ़ाया था।'

'फिर भी तेरी समझ में नहीं आया कि दिशा क्या होती है?'

'इसीलिए तो पूछ रहा हूँ।'

'दिशा...' उस औरत ने बताना शुरू किया लेकिन खुद चक्कर में पड़ गई। उसे लगा कि दिशा कितनी जानी-बूझी चीज़ है, लेकिन बच्चे को उसका ज्ञान कराना कितना मुश्किल। उसने कुछ कठिनाई महसूस करते हुए कहा, 'दिशाएँ चार होती हैं बेटे: पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण। देखो, अगर हम सुबह के समय सूरज की तरफ मुँह करके खड़े हों, तो हमारे सामने वाली दिशा पूर्व होगी, पीछे वाली पश्चिम, बाएँ हाथ की उत्तर और दाएँ हाथ की दक्षिण।'

लड़का माँ का मुँह ताकता रहा कि शायद कुछ और बताएगी लेकिन वह चुप हो गई तो बोला, 'यह सब तो मेरी साइंस वाली टीचर ने भी बताया था माँ। वे हमारी क्लास के सारे बच्चों को बाहर मैदान में ले गई थीं। वहाँ जाकर उन्होंने हम सबको सूरज की तरफ़ मुँह करके खड़ा होने को कहा और बोलीं, 'अब तुम्हारे सामने पूर्व है, पीछे पश्चिम।'

'फिर समझने को क्या रह गया?'

'लेकिन माँ! मुझे दिशा कहीं दिखाई ही नहीं दी। मैंने खूब अच्छी तरह देखा। वहाँ सामने मैदान की घास थी। उसके बाद पेड़ों की

* प्रारंभ शैक्षिक संवाद (जुलाई-सितंबर 2008) से साभार

कतार थी। उसके बाद स्कूल के पीछे वाली बिल्डिंग थी। उनके ऊपर आसमान था। आसमान में सूरज था। दो-तीन चीलें उड़ रही थीं, लेकिन पूर्व तो कहीं भी नहीं था।'

अब उस औरत को बेटे की नासमझी से परेशानी होने लगी। बोली, 'तुमने अपनी टीचर से पूछा फिर?'

'पूछा माँ! मैंने कई बार पूछा। मैंने कहा, मैडम, मेरे को सामने की सब चीज़ें दिखाई दे रही हैं। लेकिन पूर्व दिखाई नहीं दे रहा।' मैडम ने मेरे को पूर्व नहीं दिखाया। बस, यही कहती रहीं कि 'जिधर तुमको ये सब चीज़ें दिखाई दे रही हैं, उधर पूर्व दिशा है।' मैंने कहा- 'मैडम, मुझे तो कहीं भी दिखाई नहीं देती। मैडम बोलीं, सब चीज़ें दिखाई थोड़े ही ना देती हैं। हवा कहीं तुम्हें दिखाई देती है? परंतु तुम जानते हो कि हवा है।'

'तुम्हारी मैडम ने बिल्कुल ठीक बताया।' उस औरत ने राहत की साँस ली। उसे लगा, अब वह बेहतर ढंग से बेटे को दिशाज्ञान करा सकती है। उसने कहा, 'कई चीज़ें होती हैं बेटे, जो दिखाई नहीं देतीं, परंतु होती हैं। अब जैसे हम कहते हैं ऊँचाई। तो क्या ऊँचाई हमें दिखाई देती है? हम ऊँचे कद के लोगों को देखते हैं, ऊँची-ऊँची बिल्डिंगों को देखते हैं, ऊँचे पहाड़ों को देखते हैं, उनसे भी ऊँचे उड़ने वाले पक्षियों और हवाई जहाज़ों को देखते हैं, परंतु ऊँचाई को तो हम नहीं देख पाते ना? या जैसे- गहराई को लो। नाला गहरा होता है। नदी उससे भी ज़्यादा गहरी होती है। समुद्र सबसे ज़्यादा गहरा होता है। लेकिन क्या इन चीज़ों की गहराई हमें दिखाई देती है? इसी प्रकार दिशा हमें दिखाई नहीं देती, परंतु...'

लड़का सुनता रहा, लेकिन वह खिड़की से बाहर देख रहा था और किन्हीं दूसरे ही ख्यालों में खोया हुआ था। अचानक वह सचेत हुआ और माँ की बात बीच में ही काटकर बोला, 'साइंस टीचर ने आज मुझे मारा।'

'मारा क्यों?' वह औरत चौंकी, घबराई, गुस्साई और सोफे से उठकर बेटे के पास जा पहुँची। बेटे की छोटी-सी मेज़ पर बायाँ हाथ टिकाकर दाएँ हाथ से उसका गुदगुदा गाल सहलाते हुए बोली, 'यहाँ? लेकिन क्यों मारा?'

'उन्होंने जब यह कहा कि हवा दिखाई नहीं देती, तो मैंने कहा, ना दे दिखाई हवा, परंतु हमारे को महसूस होती है। लेकिन दिशा तो न दिखाई देती है, ना महसूस होती है। यह सुनकर उन्होंने मेरे को बड़ी ज़ोर से डाँटा। कहने लगीं, 'ईश्वर तेरे को दिखाई देता है? महसूस होता है? परंतु वह है कि नहीं?'

'फिर? तूने क्या जवाब दिया?' वह औरत फर्श पर बेटे की मेज़-कुर्सी के सामने बैठ गई। उसके स्वर में चकित और चिंतित होने का भाव था।

लड़का बोला, 'मैंने कहा- मैडम! मेरी माँ तो कहती है कि ईश्वर है, परंतु पापा कहते हैं कि नहीं है। मेरे को तो ईश्वर भी दिखाई नहीं देता...' बस, इतना सुनते ही टीचर गुस्सा हो गईं। तेज़ी से मेरी तरफ़ आईं और मेरे गाल पर खींच कर एक चाँटा मारा। कहने लगीं, 'तू नास्तिक है। इसीलिए तेरी समझ में कुछ नहीं आता। मैंने सैंकड़ों बच्चे पढ़ा दिए। किसी ने

भी पलटकर नहीं पूछा कि दिशा क्या होती है? बेवकूफ! अपनी क्लास के इन दूसरे बच्चों को देख! इनमें से कोई और भी तेरी तरह चिढ़-चिढ़ कर रहा है? अब अपनी खैर चाहता है, तो मुँह बंद करके चुपचाप खड़ा रह।'

'बड़ी खराब है तेरी साइंस टीचर!' कहते हुए वह औरत क्रोध से तमतमा गई, लेकिन बेटे को गोद में उठाकर उसका मुँह चूमने लगी। फिर प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, 'कल मैं तेरे स्कूल आऊँगी और पूछूँगी उससे कि बच्चे को मारने-पीटने का क्या मतलब है?'

उसी समय उस औरत का पति घर लौटा। वह उस शहर के विश्वविद्यालय में पढ़ाता था और एक गंभीर, अध्ययनशील, मगर खुशमिजाज़ आदमी था। उसने बेटे को पत्नी की गोद में देखा तो बोला, 'आज क्या बात है? इतने बड़े बेटे को गोद में उठाकर प्यार किया जा रहा है।' पत्नी ने बेटे पर उसकी विज्ञान शिक्षिका द्वारा किए गए अत्याचार के बारे में बताया और आक्रोश भरे स्वर में कहा, 'टीचर का काम बच्चे को सही ढंग से समझाना है या मारना-पीटना? मैं कल जाकर स्कूल के हैडमास्टर से उसकी शिकायत करूँगी।'

'पहले अपने बेटे को दिशाज्ञान करा दो।' पति ने सोफे पर बैठकर मुस्कराते हुए कहा, 'हज़रत सात साल के हो चुके और इन्हें अभी तक दिशाओं का ही पता नहीं।'

पति का समर्थन न पाकर पत्नी झुँझला उठी। 'दिशा ज्ञान हो कैसे? तुम तो अभी से इसे दिशाहीन बनाए दे रहे हो। यह वहाँ अपने अज्ञान के कारण नहीं पिटा है। तुमने इसे पूरा नास्तिक और अंधविश्वासी बना दिया है। इसलिए पिटा है। दुनिया की हर चीज़ आँखों से थोड़े ही दिखाई देती है! कुछ चीज़ों को मान भी लेना पड़ता है। हम तुम भी कभी बच्चे थे। हमें भी बताया गया था कि सूरज की तरफ़ मुँह करके खड़े हो जाओ तो वह पूर्व दिशा होती है और हमने माना था कि नहीं।'.

'दूसरों की बात मान लेना तो तुम्हारे बस में है, अपनी बात दूसरों से मनवा लेना नहीं, खास तौर पर बच्चों से।' पति ने हँसते हुए कहा, 'लाड़ले को होमवर्क करा रही थीं क्या? जाओ, तुम चाय बना लाओ! मैं इसे पढ़ाता हूँ। 'तुमने ही इसे बिगाड़ा है। दिन-रात इतने छोटे लड़के के सामने अपनी प्रोफ़ेसरी छाँटते रहते हो।' पत्नी जाते-जाते बड़बड़ाई, 'अभी से पक्का नास्तिक बना दिया है।'

माँ के जाने के बाद बेटा अपना काम निपटाने के लिए अपनी मेज़-कुर्सी पर बैठ गया, लेकिन पढ़ाई में ध्यान लगाने की बजाय बोला, 'ईश्वर कुछ नहीं होता। है न पापा? फिर मैडम क्यों कहती हैं कि होता है?

'छोड़ो, तुम अपना काम करो। कुछ लोग ईश्वर को मानते हैं, कुछ नहीं मानते। अपने घर में देख लो! तुम्हारी माँ मानती है, हम नहीं मानते।'

'तो दिशाओं को भी जो लोग मानते हैं, मानें। दूसरों को क्यों कहते हैं कि वे भी मानें ज़बरदस्ती।'

बेटे की बात सुनकर अब पिता को भी लगा कि मामला गंभीर है। उसने कहा, 'देखो बेटे! ईश्वर को तुम मानो या न मानो, तुम्हारा

काम चल सकता है। हम नहीं मानते, फिर भी हमारा काम चल रहा है। चल रहा है ना? लेकिन दिशाओं को न मानने पर किसी का भी काम नहीं चल सकता।'

'लेकिन पापा! ईश्वर की तरह दिशा भी तो दिखाई नहीं देती।' 'यों तो बहुत-सी चीज़ें हैं, जो दिखाई नहीं देतीं। समय तुम्हें दिखाई देता है क्या? लेकिन समय पर सब काम करने पड़ते हैं कि नहीं?'

'लेकिन दिशा होती क्या है पापा!'

'बताते हैं! तुम ज़रा अपनी मेज़-कुर्सी आगे ले आओ।'

बेटा उठा। अपनी छोटी-सी मेज़ उठाकर आगे लाया। फिर दौड़कर गया और कुर्सी भी उठा लाया।

'नहीं-नहीं, बहुत आगे ले आए। थोड़ी पीछे खिसकाओ! मुझे अपने पैर फैलाने की जगह तो दो भई!'

बेटे ने मेज़-कुर्सी थोड़ी पीछे खिसकाई।

'थोड़ा बाईं तरफ़ को खिसकाओ, ताकि रोशनी खिड़की से तुम्हारी मेज़ पर ठीक तरह से पड़े।' बेटे ने मेज़-कुर्सी बाईं तरफ़ खिसकाई।

'नहीं! बहुत ज़्यादा खिसका ली। यहाँ तो तुम्हारे ऊपर पंखे की हवा ही नहीं आएगी। ज़रा दाईं तरफ़ हटाकर बैठो।

बेटे ने मेज़-कुर्सी दाईं तरफ़ हटा ली और उस पर बैठ गया।

'अब बताओ, मैंने तुमसे क्या-क्या कहा और तुमने क्या-क्या किया?'

बेटा अपने पिता के 'खेल' को समझ गया। कुछ समय से वह इस बात को समझने लगा था कि बड़े लोग कभी-कभी 'खेल' के बहाने बच्चों को शिक्षा दिया करते हैं। यह चीज़ उसे अच्छी नहीं लगती थी। ज्योंही बड़ों का यह 'खेल' उसकी समझ में आ जाता था, वह चिड़चिड़ा हो उठता था। पिता के 'खेल' के प्रति उसने अपनी नापसंदगी जाहिर करते हुए जवाब दिया, 'आप हमें उल्लू बनाकर दिशाएँ बता रहे हैं, पापा! आगे, पीछे, बाएँ, दाएँ।'

'इसका मतलब हुआ, तुम पहले से ही जानते हो कि दिशाएँ क्या होती हैं?' पिता ने मुस्कराते हुए पूछा।

'बिल्कुल बेवकूफ थोड़े ही ना हूँ।' बेटे ने तुनकमिजाज़ी के साथ किंचित गर्वीले स्वर में उत्तर दिया।

'फिर तुम स्कूल में क्यों पिटे? पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण आगे, पीछे, बाएँ और दाएँ ही तो हैं। इनको तुम देख नहीं सकते, परंतु इनको माने बिना तुम्हारा और किसी का भी काम नहीं चल सकता।'

'किसी का भी?'

'किसी का भी। जैसे- मान लो, तुम्हें आगे जाना है और तुम आगे की तरफ़ ना जाकर पीछे की तरफ़ चल दो। जाना हो तुमको उत्तर में और चले जाओ दक्षिण में, तो क्या उस जगह जाओगे, जहाँ पहुँचना है? या यों समझो कि सड़क पर तुम्हें बाईं ओर चलना चाहिए लेकिन तुम चलने लगो दाईं ओर, तो एक्सीडेंट होगा कि नहीं?'

'छोड़िए पापा! हम समझ गए! हमें हमारा होमवर्क करने दीजिए।'

'ठीक है! करो।'

बेटा अपना काम करने लगा। पिता ने अखबार उठा लिया।

वह औरत जब चाय लेकर रसोईघर से वापस आई, तो चकित रह गई। उसने बेटे से पूछा, 'क्यों रे समझ लिया पापा से कि दिशाएँ क्या होती हैं?'

'हाँ, माँ!'

'बताना ज़रा।'

लड़के ने चारों दिशाएँ और उन्हें मालूम करने का तरीका ठीक-ठाक बता दिया।

उस औरत ने अविश्वास से पति की ओर देखा। पति मुस्कराते हुए बोला, 'ज्ञान किसी और के दिए कम, अपने अनुभव से किए ज़्यादा होता है।'

***

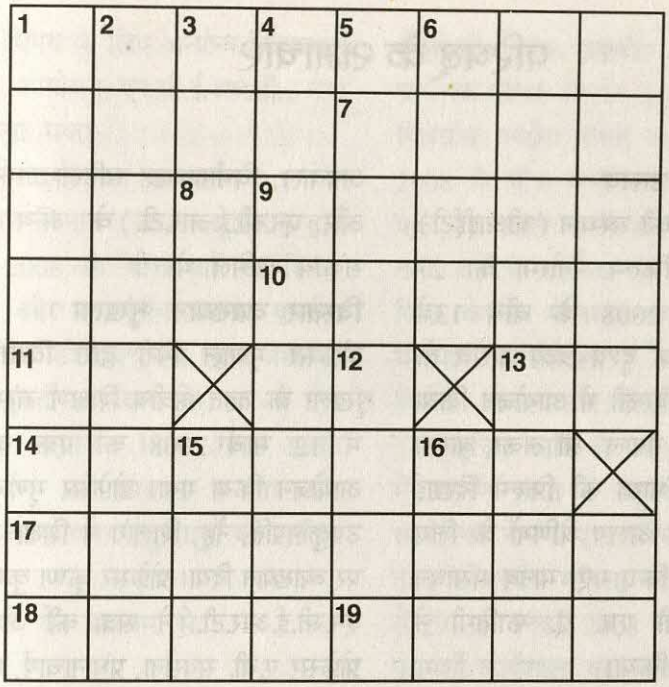

संकेत

बाएँ से दाएँ

1. हिंदी साहित्य का एक अलंकार
5. बुद्ध के जीवन पर आधारित प्रसिद्ध कथाएँ
7. सल्तनत कालीन प्रसिद्ध महिला शासक
9. एन.सी.एफ. 2005 में इस विषय को पहली और दूसरी कक्षा में काव्य और गणित में समेकित करने की संस्तुति की गई है
10. गिजुभाई बधेका रचित प्रसिद्ध पुस्तक
14. कबीर इस विचारधारा के कवि हैं
15. संस्कृत नाटककार
17. शांतिनिकेतन के संस्थापक
18. वेद जिसमें ललित कलाओं का वर्णन है
19. मुंबई के समुद्री तट का प्रसिद्ध प्वाईंट

ऊपर से नीचे

1. सुप्रसिद्ध शिक्षाविद्
2. महाकाव्य
3. कुंतीपुत्र
4. सर्वपल्ली डॉ. राधाकृष्णन् की स्मृति में मनाया जाने वाला दिवस
6. प्रसिद्ध गणितज्ञ
8. शिक्षण पद्धति इन पर केंद्रित होनी चाहिए
11. भारतीय भाषाओं का शिक्षण संस्थान यहाँ स्थित है
12. लंबी दूरी की दौड़
13. अँग्रेज़ी के कवि
16. शिक्षा नीति के निर्धारण के लिए 1966 में इनकी अध्यक्षता में समिति गठित की गई

सही उत्तर जानने के लिए इसी अंक के पृष्ठ 7 को देखें।

परिषद् के समाचार

बाल दृश्य - श्रव्य उत्सव

केंद्रीय शैक्षिकी प्रौद्योगिकी संस्थान (सीआईईटी) द्वारा दक्षिण एशिया फिल्म पैनोरमा का 27 फरवरी से 2 मार्च 2008 के बीच 13वें अखिल भारतीय शैक्षिक दृश्य-श्रव्य उत्सव के भाग के रूप में नयी दिल्ली में आयोजन किया गया। इस आयोजन में नेपाल, श्री लंका, बांग्ला देश, पाकिस्तान और भारत की फिल्में दिखाई गईं। पहली बार अलग-अलग श्रेणियों के लिए नकद पुरस्कार घोषित किए गए। मानव संसाधन विकास राज्यमंत्री, श्री एम. ए. फातिमी ने उत्सव का उद्घाटन किया।

गोष्ठियाँ और कार्यशालाएँ

एडुसैट के माध्यम से जेंडर संवेदीकरण

महिला अध्ययन विभाग (डी.डब्ल्यू.एस.) ने 28, 30 जनवरी और 1 फरवरी 2008 को सीआईईटी के एडुसैट के माध्यम से अभ्यासरत स्कूली अध्यापकों के लिए तीन दिनों के एक अभिविन्यास कार्यक्रम का आयोजन किया।

भारत के 22 राज्यों से 25 प्रसारण केंद्रों पर केंद्रीय विद्यालयों, नवोदय विद्यालयों और सी.बी.एस.ई. तथा राज्यमंडलों के साथ संबद्ध लगभग 800 अध्यापकों ने विशेषज्ञों के साथ बातचीत की, जिसमें एन.सी.ई.आर.टी. के निदेशक प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, प्रोफ़ेसर पूनम अग्रवाल, विभागाध्यक्ष महिला अध्ययन विभाग और एन.सी.ई.आर.टी. के अन्य विभागों के संकाय शामिल थे।

विस्तार व्याख्यान शृंखला

प्रोफ़ेसर मृणाल मिरी द्वारा विस्तार व्याख्यान शृंखला के तहत क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, भोपाल में 12 मार्च 2008 को एक व्याख्यान का आयोजन किया गया। प्रोफ़ेसर मृणाल मिरी, पूर्व उपकुलपति, नेहू, शिलांग ने शिक्षा और नैतिकता पर व्याख्यान दिया। प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी. ने सत्र की अध्यक्षता की। प्रोफ़ेसर ए.बी. सक्सेना, प्रधानाचार्य, क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, भोपाल ने अतिथियों का स्वागत किया और सदन से वक्ता का परिचय कराया।

पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों का संशोधन

पाठ्यक्रम सुधार के लिए 'राज्य सहायता कार्यक्रम' के तहत लगभग सभी राज्य / संघ राज्य क्षेत्र एन.सी.एफ.-2005 के प्रकाश में अपनी पाठ्यचर्याओं की समीक्षा और संशोधन करने की प्रक्रिया में हैं। 15 राज्यों ने अपनी मौजूदा पाठ्यचर्याओं की समीक्षा और संशोधन किया है। एन.सी.ई.आर.टी. की पाठ्यचर्या समिति और राज्यों के पाठ्यचर्या विकास समूहों के बीच गणित विषय के लिए 5-6 जनवरी 2008 को और 7-8 मार्च 2008 को विज्ञान

तथा ई.वी.एस. विषय के लिए अन्योन्य क्रियात्मक कार्यशाला का आयोजन एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली में किया गया।

संगठनों के नेटवर्क का अनुवर्तन

महिला अध्ययन विभाग (डी.डब्ल्यू.एस.) द्वारा 11–14 मार्च 2008 के बीच बालिका शिक्षा, क्षमता निर्माण और सशक्तीकरण पर कार्यरत संगठनों के लिए डी.डब्ल्यू.एस. द्वारा स्थापित नेटवर्क के अनुवर्ती कार्यक्रम के रूप में एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इसके उद्देश्य 'नेटवर्क' को अद्यतन बनाना और कार्ययोजना के कार्यान्वयन हेतु राज्यों की समीक्षा करना थे।

एडुसैट नेटवर्क के माध्यम से अभिविन्यास

पाठ्यचर्या समूह द्वारा एस.सी.ई.आर.टी., डी.आई.ई.टी., सी.टी.ई. और आई.ए.एस.ई. के अध्यापक प्राध्यापकों के लिए एन.सी.एफ.–2005 पर एक अभिविन्यास कार्यक्रम 4–10 मार्च 2008 के बीच सी.आई.ई.टी. के एडुसैट नेटवर्क के माध्यम से आयोजित किया गया। देशभर के लगभग 1000 प्रारंभिक और माध्यमिक स्तर के अध्यापक एवं प्राध्यापकों ने इसमें भाग लिया।

प्रौद्योगिकी के संकेंद्रण पर राष्ट्रीय परामर्श

सी.आई.ई.टी. में 18–19 फरवरी 2008 के दौरान शिक्षा की गुणवत्ता को बढ़ाने के लिए प्रौद्योगिकियों के संकेंद्रण पर दो दिवसीय राष्ट्रीय परामर्श का आयोजन किया गया। प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार ने उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता की। शिक्षा प्रौद्योगिकीविद् और पूर्व एन.सी.ई.आर.टी. प्रोफ़ेसर एस. एस. कुलकर्णी मुख्य अतिथि थे।

ई.सी.सी.ई. पर समर्थन हेतु राष्ट्रीय गोष्ठी

प्रारंभिक शिक्षा विभाग (डीईई) द्वारा एक तीन दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी का 29 से 31 जनवरी 2008 के बीच सभी पणधारियों को चर्चा हेतु एक मंच प्रदान करने के लिए आयोजन किया गया, जहाँ वे प्रारंभिक बाल्यावस्था परिचर्या तथा शिक्षा के क्षेत्र में अपने अनुभवों को बाँट सकें।

परामर्शी कार्यशाला

विशेष आवश्यकता शिक्षा समूह विभाग ने ''अनुसूचित जाति के बच्चों के विशेष संदर्भ में ग्रामीण भारत में स्कूली शिक्षा पर राष्ट्रीय सम्मेलन'' नामक एक परियोजना ली है, जिसके तहत जीवनदीप महिला महाविद्यालय, वाराणसी में 29–31 जनवरी 2008 के बीच तीन दिवसीय परामर्शी कार्यशाला का आयोजन किया गया था।

रचनात्मकता पर राष्ट्रीय सम्मेलन

क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में 12–14 मार्च 2008 के बीच एक राष्ट्रीय सेमिनार का आयोजन किया गया जिसका विषय था 'शिक्षा में रचनात्मकता'। अपने उद्घाटन संबोधन में प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी. ने रचनात्मकता की संकल्पना और कक्षा में शिक्षण के साथ इसके समेकन एवं रचनात्मकता में अध्यापक की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए चर्चा की। इस गोष्ठी में देशभर के 108 प्रतिभागियों ने भाग लिया।

भारतीय महिलाओं के योगदान 1857–1947

महिला अध्ययन विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. ने सेंटर फॉर विमेन्स डेवलपमेंट स्टीडीज़ और क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान शिलांग और भुवनेश्वर

के सहयोग से क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान शिलांग के पास सेंट मेरी कॉलेज में एक प्रदर्शनी का आयोजन किया (19-20 फरवरी 2009)। इस प्रदर्शनी का शीर्षक था "ए विज़ुअल डॉक्यूमेंटरी", जिसमें भारतीय इतिहास की आधुनिक अवधि के कुछ दुर्लभ साक्ष्य प्रस्तुत किए गए थे जो राष्ट्रीय आंदोलन, सामाजिक सुधार और शिक्षा के विकास में महिलाओं की भागीदारी पर प्रकाश डालते हैं।

सआदत हसन मंटो पर राष्ट्रीय गोष्ठी

एक जाने-माने उर्दू लघुकथा लेखक सआदत हसन मंटो पर दो दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा 29-30 मार्च 2008 के बीच क्षेत्रीय शिक्षा संस्थान, भोपाल में किया गया।

आर के नारायण पर राष्ट्रीय सेमिनार

भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, मैसूर में 26 से 28 फरवरी, 2008 के बीच आर.के. नारायण के विचारों में बच्चे और परिवार पर तीन दिवसीय राष्ट्रीय गोष्ठी का आयोजन किया गया। इसमें अध्यापकों, शिक्षाविदों, गैर सरकारी संगठनों, साहित्यकारों, अनुसंधानकर्ताओं और राष्ट्रीय बाल अधिकार आयोग के सदस्यों ने भाग लिया।

प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा का भाषण

प्रोफ़ेसर शांता सिन्हा, अध्यक्षा, राष्ट्रीय बाल अधिकार आयोग (एन.सी.सी.आर.) ने बालश्रम, बाल अधिकारों और शिक्षा पर उद्‌बोधन दिया। बच्चों को वंचित समूहों से स्कूल तक लाने में अपने अनुभवों से दृष्टांत लेकर उन्होंने बालश्रम और शिक्षा के अधिकार, सस्ते श्रम की बाज़ार माँग के साथ सभी प्रकार के श्रम युक्त कार्यों में बच्चों को अमानवीय परिस्थितियों में डालने तथा अभिभावकों, यहाँ तक कि गरीब माता-पिता द्वारा भी शिक्षा की बढ़ती हुई माँग पर जानकारी दी। उन्होंने अध्यापकों, शिक्षाविदों और अन्य व्यक्तियों को बालश्रम के प्रति संवेदनशील होने की प्रेरणा दी और अनुरोध किया कि बालश्रम की किसी भी घटना और बच्चों को पढ़ाई से वंचित रखने और सम्मानजनक जीवन से दूर रखने की जानकारी को सामने लाया जाना चाहिए।

राज्य पाठ्यचर्याओं में संशोधन

एन.सी.एफ. - 2005 में बताए गए विचारों के आधार पर एन.सी.ई.आर.टी. ने स्कूली शिक्षा के सभी चरणों के लिए आदर्श पाठ्यचर्याएँ और पाठ्यपुस्तकें विकसित की हैं, जो राज्यों के लिए एक नमूने के रूप में कार्य कर सकती हैं।

राज्यों ने एन.सी.एफ.-2005 में की गई सिफ़ारिशों के प्रकाश में मौजूदा पाठ्यचर्याओं की समीक्षा की। तब कुछ राज्यों ने राज्य

पाठ्यचर्या की रूपरेखा का विकास किया, जबकि अन्य ने प्रत्यक्ष रूप से अपनी पाठ्यचर्याओं और पाठ्यपुस्तकों में संशोधन किया।

एन.सी.ई.आर.टी. एडुसैट समन्वय बैठक

विशेष आवश्यकताओं वाले समूहों के लिए शिक्षा विभाग ने गुजरात, हरियाणा, पंजाब, उ.प्र., म.प्र., बिहार, दिल्ली, महाराष्ट्र, हिमाचल प्रदेश, जम्मू और कश्मीर, राजस्थान, छत्तीसगढ़ और उत्तराखंड जैसे हिंदी भाषी राज्यों में स्थित एन.सी.ई.आर.टी. एडुसैट नेटवर्क केंद्र के 14 केंद्र समन्वयकों के साथ 22 जून 2008 को एक दिवसीय बैठक का आयोजन किया।

कार्यक्रम सलाहकार समिति की 43वीं बैठक

एन.सी.ई.आर.टी. की कार्यक्रम सलाहकार समिति की 43वीं बैठक का आयोजन 8-9 अप्रैल, 2008 के बीच किया गया। पी.ए.सी. का महत्त्व बताते हुए प्रोफ़ेसर एम.एस. खापरडे, प्रमुख (पी.पी.एम.ए.डी.) ने एन.सी.ई.आर.टी. की कार्यक्रम प्रसंसाधन प्रक्रिया को समझाया। अपने आरंभिक उद्‌बोधन में प्रोफ़ेसर कृष्ण कुमार, निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी. ने एन.सी.ई.आर.टी.द्वारा किए गए महत्त्वपूर्ण उपायों के माध्यम से स्कूली शिक्षा सुधार में 11वीं योजना के दौरान एन.सी.ई.आर.टी. की भूमिका पर प्रकाश डाला।

अभिविन्यास एवं प्रशिक्षण

सहकारी विद्यालयों के प्रधानाचार्यों और शिक्षकों का एक अभिविन्यास सहप्रशिक्षण 2 वर्षीय बी.एड. (माध्यमिक) और 4 वर्षीय समेकित बी.एस.सी., बी.एड. पाठ्यक्रम की संरचना पर 9-10 जून 2008 के बीच आयोजित किया गया, जिसमें शिक्षण और संबंधित क्षेत्र के अनुभवों में इंटर्नशिप का विशेष संदर्भ निहित था। इस कार्यक्रम के समन्वयक डॉ. के.के. खरे (क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान भोपाल) थे।

संस्कृत साहित्य में वैज्ञानिक विचारों पर स्रोत पुस्तक

संस्कृत साहित्य में अनेक विज्ञान निहित हैं, जैसे कि गणित, ज्योतिष विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान, कृषिविज्ञान, वास्तुकला, शिल्पकला आदि। भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी. ने संस्कृत भाषा में वैज्ञानिक विचारों पर स्रोत पुस्तक को तैयार करने की एक परियोजना ली है।

भाषा क्षमता पर कार्यशाला

क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, मैसूर के प्रौद्योगिकी खंड में माध्यमिक चरण के हिंदी शिक्षकों के लिए तीन दिवसीय अभिविन्यास कार्यक्रम आयोजित किया गया। इसका उद्‌घाटन जी.टी. भंडगे, प्रधानाचार्य, क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, मैसूर द्वारा 11 जून 2008 को किया गया।

प्रशिक्षण

कंप्यूटर शिक्षा और प्रौद्योगिकीय सहायता विभाग द्वारा 2-13 जून 2008 के बीच "यूज़ ऑफ आई.टी. टूल्स एण्ड आई.टी. बेस्ड लर्निंग रिसोर्सेस इन स्कूल एजुकेशन" विषय पर 12 दिवसीय अभिविन्यास कार्यक्रम आयोजित किया गया।

पुनश्चर्या पाठ्यक्रम

- ❑ क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, अजमेर में 6-26 मई 2008 के दौरान जे.एन.वी. के 17 पी.जी.टी. (जीवविज्ञान) के लिए इक्कीस दिवसीय पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित किया गया था। यह कार्यक्रम जे.एन.वी.

समिति, नयी दिल्ली के अनुरोध पर आयोजित किया गया था। शिक्षा के विभिन्न विषयों, जैसे कि जीवविज्ञान शिक्षण और रचनात्मकता तथा जैव रिएक्टर और इसके अनुप्रयोग, अधोगामी प्रसंसाधन, आनुवांशिक रूप से रूपातंरित खाद्य पदार्थों को पाठ्यक्रम में शामिल करने पर चर्चा की गई।

- क्षेत्रीय शिक्षण संस्थान, अजमेर में 3-23 जून 2008 के बीच जवाहर नवोदय विद्यालयों के 19 पी.जी.टी. (भौतिकी) के लिए इक्कीस दिवसीय पुनश्चर्या पाठ्यक्रम आयोजित किया गया था। यह कार्यक्रम जवाहर नवोदय विद्यालय समिति, नयी दिल्ली के अनुरोध पर आयोजित किया गया था।

सी.आई.ई.टी.

शैक्षिक प्रौद्योगिकी में सक्रिय अनुसंधान पर एन.सी.ई.आर.टी. संकाय के क्षमता निर्माण हेतु तीन दिवसीय कार्यक्रम का आयोजन 14-16 मई 2008 को सी.आई.ई.टी. में किया गया था। इस कार्यक्रम में एन.सी.ई.आर.टी., आर. आई.ई.एस. और एस.आई.ई.टी. तथा जामिया मिल्लिया इस्लामिया के बीस संकाय सदस्यों ने भाग लिया।

कार्यक्रम के बाद कार्य अनुसंधान समूह से सदस्यों के लिए एक याहू समूह बनाया गया।

एन.पी.ई.पी.

राष्ट्रीय जनसंख्या शिक्षा परियोजना (एन.पी.ई.पी.) ने एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली में 2008-09 के लिए द्वितीय परियोजना प्रगति समीक्षा बैठक का आयोजन किया। इस बैठक में 10 राज्यों के परियोजनाकर्मियों ने भाग लिया। भाग लेने वाले राज्यों ने वर्ष 2007-08 के दौरान कार्ययोजनाओं की स्थिति की रिपोर्ट प्रस्तुत की तथा वर्ष 2008-09 के लिए बजट का प्रस्ताव दिया।

एन.आई.सी., शिलांग के साथ आभासी कक्षाकक्ष

प्रोफ़ेसर एम के सतपथी, प्रमुख, डी.ई.एस.एम. तथा आई.एस.टी., एन.ई.आर.आई.ई., शिलांग में एन.आई.सी., शिलांग की सहायता से 30 अप्रैल 2008 को उपग्रह सेवा का उपयोग करते हुए ई-अधिगम्यता के ज़रिये "स्कूल स्तर पर पर्यावरण संबंधी शिक्षा" नामक एक ई-मॉड्यूल का विकास किया।

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका के बारे में

साथियो,

प्राथमिक शिक्षक पत्रिका में प्रारंभिक शिक्षा से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर आधारित ऐसे लेख प्रकाशित किए जाते हैं जो एक शिक्षक के लिए उपयोगी हों। इस पत्रिका के कुछ महत्वपूर्ण सरोकार हैं–

- शिक्षा संबंधी महत्वपूर्ण दस्तावेज़ों की जानकारी एवं विवेचन
- समसामयिक शैक्षिक शोध एवं अध्ययनों का विवरण
- समसामयिक शैक्षिक चिंतन
- शिक्षकों एवं शिक्षाविदों के अनुभव
- शिक्षकों एवं अभिभावकों के लिए व्यावहारिक बाल मनोविज्ञान
- शालाओं एवं शिक्षा केंद्रों की समीक्षा
- शिक्षा संबंधी खेल एवं उनकी उपयोगिता
- विभिन्न शिक्षण विधियाँ
- क्रियात्मक शोध और नवाचार
- शिक्षकों के लिए पठनीय पुस्तक के बारे में जानकारी आदि।

कैसे भेजें रचनाएँ

उपरोक्त सरोकारों पर आधारित लेख, संस्मरण, कविताएँ आदि आमंत्रित हैं। कृपया ध्यान रखें कि लेख सरल भाषा में तथा रोचक हों। शोधपरक लेखों के साथ संदर्भ साहित्य की सूची अवश्य दें। लेखों के प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय की व्यवस्था है। लेखों की त्रुटिरहित टंकित प्रति अगर सी.डी. में भेज सकें तो अच्छा रहेगा। लेख ई-मेल द्वारा भी भेजे जा सकते हैं। अपने लेख निम्न पते पर भेजें –

अकादमिक संपादक
प्राथमिक शिक्षक
प्रारंभिक शिक्षा विभाग
एन.सी.ई.आर.टी.
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110016
ई. मेल- deencert @ yahoo.co.in

कैसे बनें सदस्य

इस पत्रिका के सुचारु रूप से प्रकाशन, प्रचार एवं प्रसार के लिए पाठकों तथा लेखकों का सहयोग अनिवार्य है। इस संदर्भ में आपसे निवेदन है कि इस पत्रिका के स्थायी सदस्य के रूप में अपने विद्यालय, संस्थान अथवा स्वयं को पंजीकृत करवाने का कष्ट करें। इसका वार्षिक चंदा केवल 260 रु. है और प्रति कॉपी का मूल्य मात्र 65 रु. है। आशा है आप इस दिशा में शीघ्र ही निर्णय करके विद्यालय, संस्थान अथवा निजी वार्षिक सदस्यता के लिए कार्यवाही करेंगे। वार्षिक सदस्यता शुल्क-पत्र के लिए अपना पत्र स्वनामांकित लिफाफे सहित **बिज़नेस मैनेजर, प्रकाशन विभाग (एन.सी.ई.आर.टी.) श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली-16** को भेज सकते हैं।

हमारे स्कूल का नाम नगर निगम प्राथमिक पाल विद्यालय नं 3 देवली है। हमारा स्कूल दो मंजिला है और उसमें ग्यारह कमरे हैं। हमारे स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या चार सौ हैं। हमारे स्कूल में प्रधानाचार्या सहित कुल आठ शिक्षक हैं। हमारे स्कूल की साफ सफाई अच्छी है। कंप्यूटर टीचर हमें अच्छी तरह पढ़ाते-सिखाते हैं। हमें खाने में बढ़िया खाना खाने को मिलता है। पीने के लिए हमारे स्कूल में पीने का पानी नहीं है। और टायलेट भी नहीं है। हमारे स्कूल में खेल-सामग्रियां नहीं है। हम लोग ग्राउंड में कबड्डी खेलते हैं।

• नाम - रजन झा
पता - 2 - 48।
दुर्गा विहार
नई दिल्ली - 110062.

N.C.E.R.T. Library 16/3, B.C.

मेरा सपना

मेरा सपना यह है कि मैं बड़े होकर डाक्टर बनके गरीब लोगों का मुफ्त इलाज करूँ। जब कभी मैं किसी गरीब को इलाज के बिना हस्पतालों के बाहर देखती हूँ तो मुझे बहुत दुख होता है। मेरे पापा-मम्मी समाजसेवक हैं और मुझे उनसे बहुत प्रेरणा मिलती है। काश सभी लोग इन बातों को समझ पाते।

लावण्या वर्मा

कक्षा IV th - B

Gr. Agnel School

बाल मन कुछ कहता है

मैं मेरे मनमेऐसी बहुत सी चीजें हैं जो मैं कर्ता नहीं पाता। जैसे की उड़ना। मैं चहता तो हूँ उड़ना पर उड़ नहीं पाता। मैं हर दिन यह सोचता हूँ की मैं उड़ क्यों नहीं पाता? भगवान ने हमें ऐसी शक्ति नहीं दी है। हमारे पंखी जैसे पंख नहीं है। मैं जब आस-पास या कहीं और देखता हूँ तो मैं ऐसे बहुत से पक्षियों को देखता हूँ जो उड़ सकते हैं। तब मैं यह सोचता हूँ की क्या भगवान ने इनको शक्ति दी और हमको यह शक्ति ही न देना भूल गए? अगर हमारे पास ऐसी शक्ति होती तो कितना मजा आता। हमे ट्रेन या बस आदि से जाना नहीं पड़ता और इनके लिए पैसे खर्च भी नहीं करने पड़ते। काश ऐसा होता पर खैर छोड़ो इससे आदमी आलसी भी बन सकता था और मेहनत करना भूल जाए। इसलिए भगवान ने हमें जितना कुछ दिया है हमें उसी से ही खुश रहना चाहिए।

- नाम- अमित कुमार जेना
कक्षा- पंचम है।
रोल नं- 38
के वि स डी आर टी

बच्चे के थोड़ा और पास जाओ

महेश*

बच्चा कहाँ जा रहा है?
मुझे क्या पता।
बच्चा क्या खा रहा है?
मैं नहीं जानता।
बच्चा क्यूँ रो रहा है?
मैं क्या जानूँ।
बच्चा क्यूँ खुश हो रहा है?
मुझे क्या।
बच्चा क्यूँ चुप हो रहा है?
कह नहीं सकता।
बच्चा क्यूँ गुम हो रहा है?
मुझे नहीं पता।
'क्या तुम इस बच्चे के टीचर नहीं हो?'
हाँ हूँ तो सही! टीचर, पढ़ाने वाला।
नहीं।
तुम केवल इसे 'पढ़ाने वाले' नहीं
'बढ़ाने वाले' भी हो।
इसलिए!
बच्चें के थोड़ा और पास जाओ
और पता करो
बच्चा कहाँ जा रहा है?
क्या खा रहा है?
बच्चा क्यूँ रो रहा है?
बच्चा क्यूँ खुश हो रहा है?
बच्चा क्यूँ चुप हो रहा है?
बच्चा क्यूँ गुम हो रहा है?

* राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर द्वारा प्रकाशित पत्रिका *अनौपचारिका* अगस्त, 2009 से साभार

रजि. नं. 32427/76

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING